MAST-111

संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड–1 व्याकरणशास्त्र

इकाई–1 आचार्य पाणिनि **5–15**

पाणिनि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, पाणिनि का कर्तृत्व पाणिनि कालिक लोक–भाषायें, पाणिनि एवं संस्कृत, पाणिनि की संस्कृत–व्याकरण को देन।

इकाई–2 आचार्य कात्यायन एवं आचार्य पतंजलि **16–29**

कात्यायन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कात्यायन का कर्तृत्व कात्यायन की भाषा, वार्तिक का लक्षण, आचार्य कात्यायन की संस्कृत व्याकरण को देन। पतंजलि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, पतंजलि का जीवन चरित, पतंजलि की संवाद–शैली, पतंजलि का कर्तृत्व, संस्कृत व्याकरण को पतंजलि की देन तथा 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' की व्याख्या।

इकाई–3 आचार्य भट्टोजिदीक्षित, आचार्य वरदराज एवं आचार्य नागेश भट्ट **30–41**

आचार्य भट्टोजिदीक्षित का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, भट्टोजिदीक्षित का कर्तृत्व। आचार्य वरदराज का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं आचार्य वरदराज की व्याकरणशास्त्र को देन। नागेश भट्ट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व, वैशिष्ट्य तथा गुरु–शिष्य परम्परा, व्याकरणशास्त्र को नागेश भट्ट की देन।

mÙkj izns’k jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;
mÙkj izns'k iz;kxjkt

ijke'kZ lfefr

izks0 lhek flag	dqyifr] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
duZy fou; dqekj	dqylfpo] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izks0 lR;iky frokjh	funs’kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt

fo'ks"kK lfefr

izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt
izks0 gfjnÙk 'kekZ	vkpk;Z ,oa iwoZ v/;{k] laLd`r foHkkx b0fo0fo] iz;kxjkt
izks0 dkS'kysUnz ik.Ms;	vkpk;Z ,oa v/;{k] lkfgR; laLd`r foHkkx dkfgfofo] okjk.kh
izks0 mes'k izrki flag	vkpk;Z] laLd`r foHkkx dk'kh fgfofo] okjk.klh
Mk- fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] laÑr ¼lafonk½

lEiknd@ifjekid

izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z laÑr@mifuns'kd ekufodh fo|k'kk[kk m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

ys[kd

Mk0 x.ks'k Hkkxor	lgk;d vkpk;Z] laLd`r foHkkx jktdh; egkfo|ky;] xqIrdk'kh] #nziz;kx] mÙkjk[k.M

leUo;d

Mk0 fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] laÑr m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

2023 ¼eqfnzr½

© m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt&2023

ISBN- 978-81-19530-76-2

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2023

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज।

ARCH-095

© UPRTOU, 2023, <संस्कृतशास्त्र एवं शास्त्रकार> is made available under a creative commons Attribution-Share Alike 4.0 http://creativecommons.org/licences/by-sa/4.0

खण्ड–1

व्याकरणशास्त्र

प्रस्तावना :

भारतीय वाङ्मय में व्याकरणशास्त्र का महत्त्व सर्वविदित है। भाषा का मूल स्थान शब्द ही है, अतः शब्द–ज्योति से ही यह संसार आलोकित हो रहा है। यदि शब्द–ज्योति प्रादुर्भूत न हुयी होती तो यह संसार अन्धकारमय हो जाता। इसी बात को आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है–

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयं ।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।।

व्याकरणशास्त्र का मूल; वेद है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों, प्रातिशाख्यों आदि में भी व्याकरण सूत्ररूप में वर्णित है, जिसकी व्याख्या परवर्ती वैयाकरणों द्वारा की गयी। 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिस शास्त्र से शब्दों की प्रकृति–प्रत्यय युक्त व्युत्पत्ति की जाती है, वह व्याकरण है। व्याकरण शब्द की सिद्धि वि +आङ् उपसर्गपूर्वक कृ धातु करणे से ल्युट् प्रत्यय करके होती है, अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति की जाती है उसे व्याकरण कहते हैं। साधु शब्द का ज्ञान व्याकरण द्वारा होता है। संस्कृत–वाङ्मय में व्याकरण का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। उसकी गणना षड्वेदाङ्गो में की गयी है। व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है – मुखं व्याकरणं स्मृतम्। वेद का मुख होने के कारण वह मुख्य भी है। पतञ्जलि मुनि ने भी "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येय्यो ज्ञेयश्च" इस आगमवचन का प्रमाण देकर व्याकरण की प्रधानता की ओर ही संकेत किया है। व्याकरण के अध्ययन के बिना किसी भी शास्त्र, वेदान्त, स्मृति, पुराण, काव्य आदि में प्रवेश नहीं किया जा सकता। शब्दों का उचित प्रयोग का ज्ञान भी व्याकरण से हो पाता है, जिससे अर्थ के अनर्थ की संभावना नहीं रहती। क्योंकि, किंचित् उच्चारण दोष से स्वजन (सम्बन्धी) श्वजन (कुत्ता), सकल (सम्पूर्ण) शकल (खण्ड) और सकृत् (एक बार) शकृत (विष्ठा) बन जाता है। अतः कहा भी गया है –

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलः शकलः सकृत्छकृत्।।

ऋक्तन्त्र में व्याकरणशास्त्र की प्राचीन परम्परा उल्लिखित है। ऋक् तन्त्र के अनुसार व्याकरण के प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा थे। ब्रह्मा ने व्याकरण की शिक्षा बृहस्पति को, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने अन्य ऋषियों

को और ऋषियों ने ब्राह्मणों को प्रदान की। व्याकरण वाङ्मय में ऐन्द्र व्याकरण सबसे प्राचीन माना जाता है। तत्पश्चात् अन्य व्याकरणाचार्यों ने व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया। पाणिनि से पूर्व कितने व्याकरण बने, यह कहना सम्भव नहीं है। पाणिनि ने अपने शास्त्र अष्टाध्यायी में उनसे पूर्व 10 प्राचीन वैयाकरणों का नामोल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं–

आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भरद्वाज, शाक्टायन, शाकल्य, सेनक, स्फोटायन।

इनके अतिरिक्त प्राचीन काल में अन्य वैयाकरण भी विद्यमान थे, जिनमें इन्द्र, काशकृत्स्न, पौष्करसादि, भागुरि, माध्यन्दिनि। वर्तमान में इन आचार्यों का व्याकरण पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं है, अतः सर्वप्रथम पूर्ण व्याकरण पाणिनि मुनि का ही प्राप्त होता है। यही कारण है कि आज पाणिनीय व्याकरण लोकप्रिय है।

इकाई–1 आचार्य पाणिनि

इकाई की रूपरेखा

1.1– इकाई परिचय

1.2– उद्देश्य

1.3– पाणिनि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

1.4– पाणिनि का कर्तृत्व

1.4.1– अष्टाध्यायी के अन्य नाम

1.5– पाणिनि कालिक लोक–भाषायें

1.6– पाणिनि एवं संस्कृत

1.7– पाणिनि का संस्कृत–व्याकरण को देन

1.8– बोध प्रश्न

1.1 इकाई परिचय

परास्नतक संस्कृत (MAST) में निर्धारित प्रश्न–पत्र 'संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-111)के खण्ड–1 व्याकरणशास्त्र के अन्तर्गत इकाई–1 आचार्य पाणिनि से सम्बन्धित हैं। इस इाकई में हम आचार्य पाणिनि के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य प्रकृत ईकाई के अध्ययन शिक्षार्थी

- पाणिनि के जन्म–समय के बारे में परिचित हो सकेंगे।
- पाणिनि के कर्तृत्व के बारे में जान सकेंगे।
- अष्टाध्यायी के स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पाणिनिकालीन लोक भाषा से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृत व्याकरण में पाणिनि के अवदान का बोध हो सकेगा।

1.3 पाणिनि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

आचार्य पाणिनि संस्कृत–व्याकरण के प्रतिनिधि आचार्य हैं। आचार्य पाणिनि के जन्म–समय एवं जन्म–स्थान के विषय में मतैक्य का अभाव है, किन्तु पाणिनि

व्याकरण की अवतरण आख्यापिका से यह स्पष्ट होता है कि–

पाणिनि ने घोर तपस्या करके भगवान् शिव को प्रसन्न किया और उनकी कृपा से अइउण् आदि 14 सूत्रों को प्राप्त किया जिन्हें माहेश्वर सूत्र नाम से जाना जाता है। ये माहेश्वरसूत्र ही पाणिनि व्याकरण के मूलपीठस्थानीय हैं।

नृत्तावसाने नटराजराजो, ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।

1. अइउण् 2. ऋलृक्। 3. एओङ्। 4. ऐऔच् 6. हयवरट्।

7. लण् 8. ञमङणनम्. 8. झभञ्। 9. घढधष्

10. जबगडदश् 11. खफछठथचटतव् 12. कपय् 13. शषसर् 14. हल्

माहेश्वर सूत्र (शिवसूत्राणि या महेश्वर सूत्राणि) अष्टाध्यायी में आए 14 सूत्र (अक्षरों के समूह) हैं जिनका उपयोग करके व्याकरण के नियमों को अत्यन्त लघु रूप देने में पाणिनि ने सफलता पायी है। शिवसूत्रों को संस्कृत व्याकरण का आधार माना जाता है।

अष्टाध्यायी के रचयिता आचार्य पाणिनि के निम्नलिखित नाम उपलब्ध होते हैं –

(क) पाणिन– इस शब्द का उल्लेख काशिका वृत्ति में प्राप्त होता है। यह पणिन् नकारान्त शब्द से अपत्यार्थक अण् प्रत्यय प्रयुक्त होकर निष्पन्न होता है।

(ख) पाणिनि – यह ग्रन्थकार का प्रसिद्ध और लोक में विख्यात नाम है। पाणिन् शब्द से अपत्यार्थक अण् प्रत्यय होकर पाणिन बनता है, पुनः पाणिन से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय होकर पाणिनि निष्पन्न होता है।

'पाणिनोऽपत्यमित्यण् पाणिनः, पाणिनस्यापत्यं युवेति इञ् पाणिनः'।

युधिष्ठिर मीमांसक पाणिनि की व्युत्पत्ति में दूसरा मत स्वीकार करते हुए स्पष्ट करते हैं कि पणिन् नकारान्त का पर्याय पणिन अकारान्त स्वतन्त्र शब्द है, जिससे "अत इञ्" सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर पाणिनि शब्द बनता है। इनके अनुसार पणिन पाणिनि के पिता का नाम है –

पणिनः मुनिः, पाणिनिः पणिनः पुत्रः।

इसके अतिरिक्त महाभाष्यकार पतंजलि ने पाणिनि की दाक्षीपुत्र संज्ञा उल्लिखित की। पाणिनीय शिक्षा के याजुष पाठ में पाणिनेय तथा सोमेश्वर के 'यशस्तिलकचम्पू' में पणिपुत्र का भी उल्लेख मिलता है। प्राप्त स्रोतों से पाणिनि के माता–पिता, जन्म समय आदि के बारे में स्पष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है। विद्वानों द्वारा उनके पिता का नाम पणिन् तथा माता का नाम दाक्षी निर्धारित किया गया है। पाणिनि के वंश–विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्री मीमांसक पाणिनि के वंश को इस प्रकार निर्धारित करते हैं –

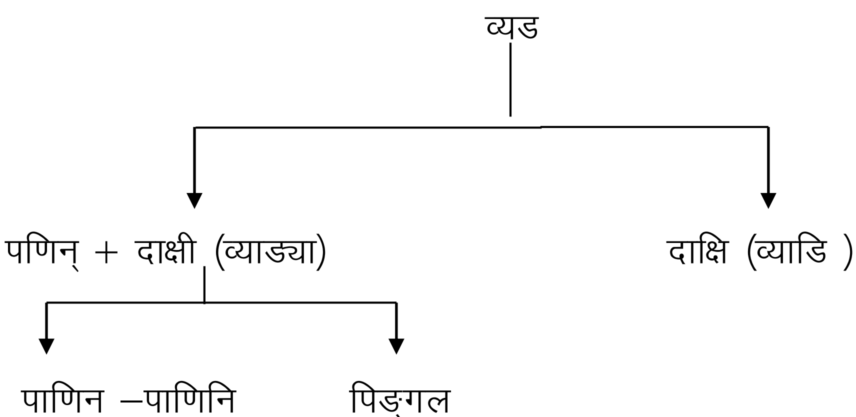

पाणिनि का जन्म स्थान शलातुर रहा है। शलातुर ग्राम में रहने के कारण पाणिनि की संज्ञा शालातुरीय हुई। पुरातत्वविद् पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत समीपवर्ती वर्तमान लाहुर ग्राम को शलातुर मानते हैं। पाणिनि के गुरु के विषय में भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते तथापि उनके गुरु का नाम वर्ष था। काव्यमीमांसाकार पाटलिपुत्र को इनका गुरुकुल मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान् तक्षशिला को स्वीकार करते हैं। पाणिनि के समय निर्धारण में पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों में मतभेद हैं। पाश्चात्य विद्वान् पाणिनि के समय को 8 वीं शती ईसा पूर्व से 4थी शती ईसा पूर्व अर्थात् 657 विक्रम पूर्व से 258 विक्रम पूर्व तक मानते हैं। जबकि युधिष्ठिर मीमांसक ने बाह्य एवं अन्तः साक्ष्यों का प्रमाण देते हुए इनका समय 2900 निर्धारित किया है। अधिकांश विद्वान् पाणिनि का काल 700 ई.पू. से 600 ई.पू. को मानते हैं।

महाभाष्य में वर्णित "उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्" सूत्र से ज्ञात होता है कि कौत्स पाणिनि के शिष्य रहे, किन्तु यह कौत्स निरुक्त एवं रघुवंश में उल्लिखित कौत्स से भिन्न हैं। नागेश के लघुशब्देन्दुशेखर से ज्ञात होता है कि वररुचि कात्यायन पाणिनि के साक्षात् शिष्य थे। इसके अतिरिक्त काशिका में पाणिनि के शिष्यों को पूर्वपाणिनीयाः, अपरपाणिनीयाः दो विभागों में बांटा गया है।

1.4 पाणिनि का कर्तृत्व

(i) अष्टाध्यायी– अष्टाध्यायी पाणिनि की अमर कृति है। पाणिनि ने संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को परिष्कृत एवं नियमित करने के उद्देश्य से भाषा के विभिन्न अवयवों एवं घटकों, यथा– ध्वनि–विभाग (अक्षरसमाम्नाय), नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण), पद, आख्यात, क्रिया, उपसर्ग, अव्यय, वाक्य, लिंग इत्यादि तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का समावेश अष्टाध्यायी में किया है। व्याकरण का व्यवस्थित एवं संक्षेपरूप अष्टाध्यायी में निबद्ध है। अष्टाध्यायी में 8 अध्याय हैं। यह सूत्ररूप में लिखा गया है। जिसमें लगभग 4000 सूत्र हैं। पाणिनि कम शब्दों में अधिक बात कहने के पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने व्याकरण को सूत्रशैली में लिखा। अध्यायानुसार विषयवस्तु निम्नवत है–

प्रथम अध्याय– प्रथम अध्याय में पाणिनि ने प्रमुख संज्ञाओं का निर्देश किया है। जिसमें वृद्धि, गुण, संयोग, सवर्ण, अनुनासिक, प्रगृह्य, घु, घ, संख्या, निष्ठा, सर्वनामस्थान हैं। इसी अध्याय में परिभाषा सूत्रों का विवरण है। प्रत्यय सम्बन्धी संज्ञा, उदात्तादि विधान, धातु संज्ञा, पदोपयोगी संज्ञा तथा निपातसंज्ञा का विवरण प्रथम अध्याय में संकलित है।

द्वितीय अध्याय– इस अध्याय का मुख्य विषय विशेष पदों का संकलन है। समासरूप विशिष्ट पद का विवेचन किया गया है। समास भेद तथा उसका विवरण उल्लिखित है। चतुर्विध समासों का क्रम वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया है, जिसमें क्रमशः अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुब्रीहि, तथा द्वन्द्व समास का निर्देश है। उपसर्जन संज्ञा, सुप् विभक्तियों के अर्थ का निर्देश इसी अध्याय में किया गया है।

तृतीय अध्याय– पाणिनि ने प्रथम दो अध्यायों में उद्देशयगत विषयों का निर्देश किया है। तृतीय–चतुर्थ–पंचम अध्याय में सब प्रकार के प्रत्ययों का विधान है। तीसरे अध्याय में धातुओं में प्रत्यय लगाकर कृदन्त शब्दों का निर्वचन है। विधेयगत प्रत्यय तिङ् कहलाते हैं। तिप् प्रत्यय 18 हैं। पाणिनि ने निर्देश किया की क्रियावाची शब्दों की मूल प्रकृति धातु है। उन्होनें लगभग 2000 धातुओं का निर्देश किया है, और इन धातुओं को वैयाकरणों ने 10 गणों में विभक्त किया है। इस अध्याय में प्रत्यय सम्बन्धी विचार, कृत प्रत्ययों का अधिकार, उणादि निर्दिष्ट हैं।

चतुर्थ एवं पंचम अध्याय– पूर्व अध्यायों में धातु से नाम की उत्पत्ति निर्देश के बाद नाम से नाम की उत्पत्ति हेतु चतुर्थ एवं पंचम अध्याय प्रणीत हुए हैं। चतुर्थ तथा पंचम अध्यायों में संज्ञा शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बने नए संज्ञा शब्दों का विस्तृत निर्वचन उल्लिखित है। प्रारम्भ में स्त्री प्रत्यय की चर्चा की गयी है, जिसमें

मुख्यतः दीर्घ ईकारान्त, दीर्घ आकारान्त छः स्त्री प्रत्यय हैं। इसके पश्चात् तद्धित प्रकरण की चर्चा है। तद्धित अधिकार प्रत्ययों का अस्वार्थिक तथा स्वार्थिक में विभाजन है। चतुर्थ अध्याय में अण्, ठक् तथा यात तीन प्रत्ययों का महाधिकार है। पंचम अध्याय के आरम्भ में अस्वार्थिक प्रत्ययों छः ठक् और ठञ् का महाधिकार निर्दिष्ट है। पंचम अध्याय के अन्त में समासान्त प्रत्ययों का निरूपण किया गया है।

षष्ठ अध्याय– पंचम अध्यायपर्यन्त शब्दगत विचार निर्देश करने के पश्चात् आचार्य पाणिनि ने छठे, सातवें एवं आठवें अध्याय में प्रकृति एवं प्रत्ययगत कार्यों की सूक्ष्मता का निर्देश किया है। इस अध्याय में उन परिवर्तनों का उल्लेख जो शब्द के अक्षरों में होते हैं, ये परिवर्तन या तो मूल शब्द में जुड़ने वाले प्रत्ययों के कारण होते हैं या सन्धि के कारण। द्वित्व, सम्प्रसारण, सन्धि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ आदि के विधायक सूत्र छठे अध्याय में संकलित हैं।

सप्तम अध्याय– इस अध्याय में प्रत्यय–कार्यों का उपदेश किया गया है। यह अध्याय लौकिक संस्कृत की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

अष्टम अध्याय– इस अध्याय का प्रारम्भ द्वित्व–विधि से होता है। इसी में शब्दों के द्वित्व विधान, प्लुत विधान एवं षत्व और णत्व का विशेषतः उपदेश है।

इस प्रकार आचार्य पाणिनि ने सम्पूर्ण व्याकरण को अष्टाध्यायी में संक्षेप रूप में समाहित किया है। अष्टाध्यायी ने व्याकरण के पूर्व ग्रन्थों को तिरोहित सा कर दिया है।

1.4.1 अष्टाध्यायी के अन्य नाम

अष्टक, अष्टाध्यायी– इस व्याकरण में आठ अध्याय होने के कारण इसे अष्टक, अष्टाधायी नाम प्रसिद्ध हुआ।

शब्दानुशासन– महाभाष्य के प्रारम्भ में अष्टाध्यायी का नाम शब्दानुशासन प्राप्त होता है।

वृत्तिसूत्र– पाणिनीय सूत्र के लिए वृत्तिसूत्र शब्द का प्रयोग महाभाष्य में प्राप्त होता है।

अष्टाध्यायी सूत्र शैली में निबद्ध है, अत्यन्त लाघव के लिए सूत्रशैली का प्रयोग किया है। सूत्र शब्द 'सूत्र वेष्टने चौरादिक ण्यन्त धातु से अच् अथवा घञ् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। संकेतमात्र सूत्रों का अभिप्राय समझने के लिए व्याख्यान–ग्रन्थों की आवश्यकता होती है। अष्टाध्यायी के प्रमुख वृत्तिकार निम्नलिखित हैं–

पाणिनि– पाणिनि ने स्वयं अपने सूत्रों का अनेक बार प्रवचन किया था। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृत व्याकरण का इतिहास' में अनेक प्रमाण देकर यह पुष्ट किया है, कि पाणिनि ने अपने शब्दानुशासन की वृत्ति का प्रवचन अवश्य किया था।

श्वोभूति– जिनेन्द्र मुनि ने अपने न्यास ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि श्वोभूति ने अष्टाध्यायी की एक वृत्ति लिखी थी।

व्याडि– व्याडि ने अष्टाध्यायी की एक वृत्ति लिखी थी।

कुणि– भर्तृहरि और कैयट ने आचार्य कुणि विरचित अष्टाध्यायी की वृत्ति का उल्लेख किया है।

इनके अतिरिक्त माथुर, वररुचि, देवनन्दी, चुल्लि भट्टि, निर्लूर, चूर्णि, जयादित्य और वामन (काशिका), भागवृत्तिकार, भट्ट जयन्त, श्रुतपाल, केशव, अन्नम्भट्ट। भट्टोजिदीक्षित आदि वैयकरणों ने अष्टाध्यायी पर वृत्तियाँ लिखीं हैं। निम्न ग्रन्थ पाणिनीय शब्दानुशासन के परिशिष्टरूप में उल्लिखित हैं– धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र एवं लिंगानुशासन।

(ii) **शिक्षा**– पाणिनि ने शब्दोच्चारण के यथार्थ ज्ञान के लिए शिक्षा ग्रन्थ का निर्माण। किया श्री मीमांसक जी का मत है जिस प्रकार चन्द्रगोमी ने पाणिनीय व्याकरण के आधार पर चान्द्र व्याकरण लिखा, उसी प्रकार उसने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर अपने शिक्षासूत्र निर्मित किये। अर्वाचीन श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा का मूल ये शिक्षासूत्र ही हैं।

(iii) **जाम्बवतीविजय**– इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण का पाताल में जाना और जाम्बवती की विजय और परिणय की कथा प्रणीत है। आधुनिक विद्वान् इस महाकाव्य को पाणिनि कृत मानने में संकोच करते हैं। श्री मीमांसक और सत्यकाम वर्मा इस महाकाव्य को पाणिनिकृत स्वीकार करते है।

1.5 पाणिनिकालिक लोक–भाषायें

अष्टाध्यायी के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि पाणिनि जिस संस्कृत का व्याकरण लिख रहे थे वह लोक भाषा थी। ऐसे अनेक व्यवहारगम्य सूत्रों की प्राप्ति होती है यथा प्लुतविधान का प्रयोग। आचार्य पाणिनि ने प्लुतविधान के निमित्त अनेक सूत्रों की रचना की है। जैसे दूर से बुलाने के लिए प्रयुक्त वाक्य के टि की प्लुत संज्ञा होती है, उदाहरणार्थ– 'सक्तून् पिब देवदत्त3'। यहाँ दत्त का अन्तिम अकार प्लुत हुआ है। ऐसे अनेक उदाहरणों से प्लुतविधान की युक्तिमत्ता दिखाई

देती है। यह तभी सिद्ध हो सकता है जब संस्कृत भाषा लोक भाषा रही हो अन्यथा लिखित भाषा के लिए यह नियम उपयोगी नहीं होते हैं।

अष्टाध्यायी में ऐसे उदाहरणों का प्रयोग हुआ है जो गाली देने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे– पुत्रादिनी त्वमसि पापे! अर्थात् बेटा खाने वाली हो तू पापिनी। ऐसे उदाहरणों के प्रयोग से स्पष्ट होता है, यह संस्कृत भाषा लोक भाषा है केवल लिखित भाषा नहीं थी।

आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए पाणिनि ने उन सिक्कों को भी जाँचा जो बाजारों में चलते थे। जैसे शतमान, कार्षापण, सुवर्ण, अन्ध, पाद, माशक, त्रिंशत्क (तीस मासे या साठ रत्ती तौल का सिक्का), विंशतिक (बीस मासे की तौल का सिक्का)। कुछ लोग अदला बदली से भी माल बेचते थे। उसे निमान कहा जाता था।

अष्टाध्यायी में दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के नाम की सिद्धि हेतु पाणिनि ने सूत्रों का निर्माण किया है। ऐसी वस्तुएं समाज में प्रयुक्त होती हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय इसके कुछ उदाहारण प्रस्तुत करते है–

(क) एक खेत में जितना अनाज बोया जाता है उतने से पाणिनि ने उसका नामकरण किया है, यथा– प्रास्य, द्रौणिक, खारीक आदि शब्द इस नियम के उदहारण हैं।

(ख) नदी को पार करने के लिए जो लोग गाय की पूँछ का सहारा लेते थे उन्हें गौपुच्छिक कहा है। जो घड़े का सहारा लेकर पार करते थे, उन्हें घटिक तथा अपनी बाहुओं के सहारे पार करने वाली स्त्री को 'बाहुका' कहा गया है।

(ग) सब्जियाँ बेचने वाले; मूली और शाक की पाव की मुठ्ठी या गड्डी बनाकर बेचते थे, उसे पाणिनि ने मूलकपण तथा शाकपण कहा है।

अष्टाध्यायी में ऐसे मुहावरों का प्रयोग है जो उस समय संस्कृत भाषा को लोक भाषा सिद्ध करते हैं–

दाय्योत्थाय धावति– मेज से सीधे उठकर दौड़ता है अर्थात् अन्य आवश्यक कार्यों की चिन्ता किए बिना दौड़ता है।

कणेहत्य पय पिबति, मनोहत्य पय पिबति– भरपूर दूध अथवा जल पीना, मन की इच्छा के अनुसार जल पीना जिससे पुनः प्यास न लगे।

यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारमहम्, किं तवानेन ? अर्थात् जिस तरह से मैं चाहूँ उस तरह से भोजन करूँगा। आपका इससे क्या ?

इस प्रकार के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि उस समय में संस्कृत लोकभाषा रही होगी। बोल–चाल हेतु संस्कृत का प्रयोग होता था, अन्यथा पाणिनि इन नियमों की ओर प्रवृत्त न होते।

1.6 पाणिनि एवं संस्कृत

पाणिनि ने संस्कृत भाषा को स्थायित्व देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। पाणिनि ने अपने युग तक उपलब्ध साहित्य का परीक्षण किया और तत्पश्चात् अपने व्याकरण ग्रन्थ की रचना की। पाणिनि संस्कृत भाषा के शब्दों का नियमन करने वाले आचार्य हैं परन्तु यह संस्कृत भाषा अधिक विशद, विस्तृत तथा व्यापक है। पाणिनि के सूत्रों में प्राप्त शब्द वर्तमान में बिल्कुल लुप्त हो गए हैं अथवा उनका प्रयोग अत्यन्त अल्प है। पाणिनि के सूत्रों में प्रत्येक शब्द की भाषा–शास्त्रीय विवेचन की आवश्यकता होती है–

गन्धन– अपकार प्रयुक्त हिंसा सूचन अर्थ में

वृत्ति– अप्रतिबन्ध

उपनयनम्– विवाह, स्वीकरण

निवचनम्– मौन हो जाना

समवाय– समुदाय

कुशी– हल का बना लोहे का फाल

तीर्थ– गुरु

परीप्सा– शीघ्र

माथ– पन्थ

समापत्ति– सन्निकर्ष

1.7 पाणिनि का संस्कृत–व्याकरण को देन

पाणिनि के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए युधिष्ठिर मीमांसक कहते हैं कि पाणिनीय शब्दानुशासन का सूक्ष्म अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि पाणिनि न

केवल शब्दशास्त्र के ज्ञाता थे, अपितु समस्त प्राचीन वाङ्मय में उनकी अप्रतिहत गति थी। वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त भूगोल, इतिहास, मुद्राशास्त्र और लोक–व्यवहार आदि के भी वे अद्वितीय विद्वान् थे। उनका शब्दानुशासन न केवल शब्द ज्ञान के लिए, अपितु प्राचीन भूगोल और इतिहास के ज्ञान के लिए भी एक महान् प्रकाश पुंज है। वे अतिप्राचीन और अर्वाचीन काल को जोड़ने वाले महान् सेतु हैं।

पाणिनि के विषय में आचार्य पतंजलि लिखते है कि आचार्य पाणिनि एकान्त स्थान पर बैठकर एकाग्रचित्त होकर प्रयत्नपूर्वक सूत्रों का प्रणयन–प्रकरण विशेष स्थापन के लिए किया है। अतः उसमें एक वर्ण भी अनर्थक नहीं हो सकता फिर इतने बड़े सूत्र के आनर्थक्य का तो क्या कहना?

"प्रमाणभूतो आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्रांगमुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुं किं पुनरियता सूत्रेण"।

पाणिनीय व्याकरण की न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में भूरि–भूरि प्रशंसा हुई है। अष्टाध्यायी न केवल भारत प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व के लिए लाभप्रद ग्रन्थ है। भाषावैज्ञानिकों के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अष्टाध्यायी की पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। जिसमें टी.शेरवात्स्की ने कहा है– 'पाणिनीय व्याकरण मानवीय मस्तिष्क की सबसे बड़ी रचनानों में से एक हैं।

प्रो मोनियर विलियम्स ने लिखा है– पाणिनीय व्याकरण उस मानव–मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है, जिसे किसी दूसरे देश ने आज तक सामने नहीं रखा।

जर्मन विद्वान् मैक्समूलर कहते हैं– 'हिन्दुओं के व्याकरण अन्वय की योग्यता संसार की किसी जाति के व्याकरण साहित्य से बढ़–चढ़ कर है'।

कोलब्रुक ने कहा है– 'व्याकरण के नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गए थे और उनकी शैली प्रतिभापूर्ण थी'।

संस्कृत भाषा में अनेक व्याकरणों की रचना हुई किन्तु सम्प्रति पाणिनीय व्याकरण अष्टाध्यायी ही सम्पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। संस्कृत व्याकरण वाङ्मय में पाणिनि मुनि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन परम्परा को बढ़ाते हुए उन्होंने ऐसे व्याकरण का निर्माण किया, जिसने समकालिक तथा भविष्य में प्रयुक्त संस्कृत भाषा का मार्गदर्शन करने का कार्य किया। यह पाणिनीय व्याकरण की प्रसिद्धि ही है, कि इसे संस्कृत व्याकरण का पर्यायवाची कहा गया।

1.8 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– वेदांगों में व्याकरण को वेदपुरुष का कौन सा अंग माना गया है –

(a) श्रोत्र (b) घ्राण (c) पाद (d) मुख

2– महाभाष्यकार ने व्याकरण –अध्ययन के कितने प्रयोजन बताये हैं –

(a) 3 (b) 2 (c) 6 (d) 5

3– व्याकरण के प्रथम प्रवक्ता हैं –

(a) इन्द्र (b) बृहस्पति (c) ब्रह्मा (d) पाणिनि

4– दाक्षीपुत्र किसका नाम है –

(a) पाणिनि (b) पतञ्जलि (c) कात्यायन (d)यास्क

5– माहेश्वर सूत्रों की संख्या है –

(a) 10 (b) 14 (c) 18 (d) 21

6– अष्टाध्यायी में कितने अध्याय हैं –

(a) 9 (b) 6 (c) 8 (d) 10

7– शब्दानुशासन किसका अन्य नाम है –

(a) महाभाष्य (b) निरुक्त

(c) अष्टाध्यायी (d) जाम्बवती विजय

8– अच् प्रत्याहार में सम्मिलित वर्ण हैं –

(a) स्वर (b) व्यंजन

9– अष्टाध्यायी में पादों की संख्या है –

(a) 8 (b) 24 (c) 21 (d) 32

10– त्रिपादी –सूत्र कहा जाता है –

(a) पहले अध्याय से दूसरे अध्याय तक

(b) पहले अध्याय से पांचवें अध्याय तक

(c) दूसरे अध्याय से सातवें अध्याय तक

(d) आठवें अध्याय के अन्तिम 3 पाद

11– अष्टाध्यायी पर काशिका वृत्ति लिखी है –

(a) भट्टोजिदीक्षित (b) श्वोभूति

(c) ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (d) जयादित्य और वामन

12– जाम्बवतीविजय रचना है –

(a) पतंजलि (b) जाम्बवती

(c) पाणिनि (d) भट्टोजिदीक्षित

13– पाणिनीय शिक्षा का सम्बन्ध है –

(a) ज्योतिष (b) महाकाव्य

(c) व्याकरण (d) आयुर्वेद

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– पाणिनि और संस्कृत को स्पष्ट कीजिये ?

2– पाणिनि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत लोकभाषा थी स्पष्ट कीजिये ?

विस्तृत–उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य पाणिनि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का विवरण लिखें?

इकाई–2 आचार्य कात्यायन एवं आचार्य पतंजलि

इकाई की रूपरेखा

2.1– इकाई परिचय

2.2– उद्देश्य

2.3– कात्यायन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

2.4– कात्यायन का कर्तृत्व

2.5– कात्यायन की भाषा

2.6– वार्तिक का लक्षण

2.7– आचार्य कात्यायन की संस्कृत–व्याकरण को देन

2.8– पतंजलि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

2.9– पतंजलि का जीवन चरित

2.10–पतंजलि की संवाद–शैली

2.11–पतंजलि का कर्तृत्व

2.12–संस्कृत व्याकरण को पतंजलि की देन तथा "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्" की व्याख्या

2.13–बोध प्रश्न

2.1 इकाई परिचय

'संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार नामक प्रश्न–पत्र परास्नातक संस्कृत के तृतीय सेमेस्टर के प्रथम प्रश्न–पत्र के रूप में निर्धारित किया गया है। इसके खण्ड–1, व्याकरण शास्त्र की द्वितीय इकाई आचार्य कात्यायन एवं आचार्य पतंजलि से सम्बन्धित है। प्रकृत इकाई में इन आचार्यों के व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व का विस्तृत अध्ययन करेंगें, जिसके फलस्वरूप आचार्यों के जीवन परिचय एवं व्याकरण के सम्बन्ध में उनके योगदान की जानकारी शिक्षार्थियों हो सकेगी।

2.2 उद्देश्य : इस ईकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- कात्यायन के जन्म समय एवं जन्म स्थान के विषय में जान सकेंगे।
- कात्यायन की रचनाओं से अवगत हो सकेंगे।
- वार्तिक का बोध हो सकेगा।
- पतंजलि के जीवन परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- पतंजलि के कर्तृत्व को जान सकेंगे।
- पतंजलि की शैली से अवगत हो पायेंगे।

2.3 कात्यायन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

पाणिनि की अष्टाध्यायी का अध्ययन कर उन सूत्रों पर कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की। अष्टाध्यायी पर लिखे गए वार्तिकों में कात्यायन का वार्तिकपाठ ही अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाभाष्य में मुख्यतः वार्तिकों का ही व्याख्यान है। महाभाष्यकार ने महाभाष्य में कात्यायन के लिए वार्तिककार कहा है। 'त्रिकाण्डशेषकोष' में पुरुषोत्तम देव ने कात्यायन के निम्न नाम वर्णित किए हैं –

कात्य– गोत्र प्रत्ययान्त इस नाम का उल्लेख महाभाष्य में वार्तिककार के लिए हुआ है।

कात्यायन– पूजनीय व्यक्ति के आदर के लिए युव प्रत्ययान्त नाम से स्मरण किया जाता है। कृष्णचरित महाकाव्यकार ने स्वर्गारोहण काव्य का कर्ता वररुचि को बताया है। उसके अनुसार यह वररुचि ही वार्तिककार कात्यायन है।

इसके अतिरिक्त मेधाजित, पुनर्वसु नाम भी बताए हैं।

कात्यायन के देशकाल में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। जो भी जानकारी प्राप्त है, वह महाभाष्य से ही प्राप्त होती है। युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरण का इतिहास' में कात्यायन का अधोलिखित प्रमाणों से समय निर्धारित किया है–

प्राचीन वाङ्मय में में कई कात्यायनों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिनमें एक कात्यायन कौशिक, दूसरे आङ्गिरस तीसरे भार्गव हैं।

स्कन्दपुराण में उल्लिखित कात्यायन याज्ञवल्क्य का पुत्र है, जिसने वेदसूत्र की रचना की थी। उसे वररुचि नामक पुत्र प्राप्त हुआ। याज्ञवल्क्य पुत्र कात्यायन

श्रौत, गृह्य, शुक्ल यजुः, धर्म आदि सूत्र ग्रन्थों की रचना की। यह कात्यायन कौशिक पक्ष से सम्बन्धित है। श्री मीमांसाक इसी कात्यायन के पुत्र अर्थात् याज्ञवल्क्य के पौत्र वररुचि कात्यायन को अष्टाध्यायी का वार्तिककार मानते हैं उसके विषय में प्रमाण प्रस्तुत करते हैं –

काशिकाकार ने "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" सूत्र पर आख्यान के आधार पर बताया की शतपथ ब्राह्मण अचिरकालकृत है। जबकि वार्तिककार ने "याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात्" कहकर शतपथ ब्राह्मण को अन्य ब्राह्मणों का समकालिक कहा है। इससे अनुमान होता है कि वार्तिककार का याज्ञवल्क्य से कोई विशेष सम्बन्ध था।

महाभाष्य से विदित होता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य था। कात्यायत शाखा प्रायः महाराष्ट्र में पढ़ी जाती है।

शुक्ल, यजुः प्रातिशाख्य के अनेक सूत्र कात्यायन के वार्तिकों से समानता रखते हैं। इस समानता से भी कात्यायन का याज्ञवल्क्य से सम्बन्ध पुष्ट होता है।

सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में वार्तिककार का नाम वररुचि लिखा है।

अतः श्री मीमांसक जी ने उक्त प्रमाणों से वररुचि कात्यायन का समय विक्रम से 2900 वर्ष पूर्व निर्धारित किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास' पंचदश खण्ड में वार्तिककार कात्यायन का काल पाणिनि के लगभग 300 वर्ष बाद माना है। इस प्रकार कात्यायन का समय 500 ई. पूर्व माना जा सकता है। महाभाष्य के पस्पश आह्निक में "प्रियतद्धिता दाक्षिणात्यः" से विदित होता है कि वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे।

2.4 कात्यायन का कर्तृत्व

कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की। पाणिनि की अष्टाध्यायी का अध्ययन करने में वार्तिकपाठ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। वैयाकरण वार्तिक कात्यायन के "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" को मानते हैं, जबकि मीमांसक "रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्" को मानते हैं। जबकि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'संस्कृत शास्त्रों का इतिहास' ग्रन्थ में कात्यायन का वार्तिक "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" को प्रथम वार्तिक के रूप में वर्णित किया है।

वार्तिकों की संख्या के निर्धारण हेतु विद्वानों द्वारा महाभाष्य का अध्ययन किया गया, जिसमें वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनीय सूत्रों (3995) पर कात्यायन के

4263 वार्तिकों का उल्लेख किया है। डॉ प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने वार्तिकों की संख्या 4200 मानी है। इन्होंने वार्तिकों को 8 रूपों में प्रस्तुत किया है–

- सूत्र–व्याख्यान
- सूत्र–पद–प्रयोजन
- सूत्र–प्रयोजन
- सूत्रपद–प्रत्याख्यान
- सूत्र प्रत्याख्यान
- शंकोद्भावन–समाधान
- सम्बद्धार्थकथन
- स्वतन्त्रार्थकथन

पाश्चात्य समीक्षकों ने कात्यायन को पाणिनि का कटु आलोचक बताया। यह भ्रान्ति उन्हें वार्तिक तथा भाष्य को ठीक से न समझने के कारण हुई। अन्यथा कात्यायन ने "भगवतः पाणिनेः आचार्यस्य सिद्धम्" कहकर पाणिनि के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। पाश्चात्य विद्वान् डॉक्टर कीलहॉर्न ने वार्तिकों के रहस्य को ठीक से समझा। उनका मत था कि जहाँ किसी प्रकार पाणिनीय सूत्रों का समर्थन और औचित्य की सिद्धि न होती हो वहाँ कात्यायन ने सूत्रों पर संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन किया। डॉ कीलहॉर्न ने निष्कर्ष निकाला कि भाष्यकार ने कात्यायन के वार्तिकों पर शंका करने के लिए कुछ शब्दों का प्रयोग किया जिनमें चेत् और अव्यय हैं। वस्तुतः भाष्यकार ने अपनी इष्टियों द्वारा वार्तिकों के स्वरूप को व्याकरण–जगत् के समक्ष स्थापित किया। अष्टाध्यायी के विषय को कात्यायन ने सूत्ररूप के अतिरिक्त अन्य 4 रूपों में व्यक्त किया है –

- विवेचनात्मक
- चिकित्सात्मक
- व्याख्यानात्मक
- प्रवचनात्मक

(i) **स्वर्गारोहण काव्य**– महाभाष्य में इसका उल्लेख 'वाररुच काव्य' के रूप में मिलता है।

(ii) **भ्राजसंज्ञक श्लोक**– महाभाष्य में भ्राजसंज्ञक श्लोकों का उल्लेख मिलता है। नागेश भट्ट ने भ्राजसंज्ञक श्लोक के रचयिता वार्तिककार कात्यायन को माना है।

2.5 कात्यायन की भाषा

कात्यायन ने पाणिनि के दोषों को सुधार करने में संकोच नहीं किया। उन्होंने कई स्थलों पर पाणिनि के सूत्रों को लक्ष्य न करके बल्कि उनके वृत्तिकारों को लक्ष्य कर वार्तिकों की रचना की। कुछ शब्दों की सिद्धि पाणिनि से छूट गई थी, जबकि वे शब्द पाणिनि के समय से पूर्व भी प्रचलित थे। इन शब्दों की सिद्धि के लिए कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की। जैसे– कुलटा शब्द की सिद्धि कात्यायन ने "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" वार्तिक से सिद्ध किया। जबकि पाणिनि ने "कुलटाया वा" सूत्र में कुलटा शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु कुलटा शब्द पाणिनि निर्दिष्ट पररूप सूत्रों में वर्णित नहीं है। ऐसे ही प्रैष, दशार्ण आदि शब्दों की सिद्धि वार्तिकों द्वारा हुई है। परन्तु ये शब्द पाणिनि द्वारा प्रयोगवश अथवा ध्यान न देने के कारण छूट गए थे। इनकी सिद्धि कात्यायन द्वारा की गई। अतः ये शब्द अपूर्व नहीं हैं। कात्यायन ने अपने वार्तिकों में अनेक ऐसे शब्दों की सिद्धि की, जो शब्द लोक प्रसिद्ध और लोकप्रचलित थे। इससे यह भी सिद्ध होता है उस समय संस्कृत लोकजीवन की लोक–भाषा थी। जैसे भेड़ी के दूध अर्थ में अविमोढ, अविदूम और अविमरीस शब्दों की सिद्धि वार्तिकों द्वारा की है।

2.6 वार्तिक का लक्षण

वार्तिक का लक्षण पराशर उपपुराण में इस प्रकार दिया है–

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।

तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुवार्तिकज्ञा मनीषिणः।।

अर्थात् जिसमें उक्त, अनुक्त, दुरुक्त विषयों का विचार किया जाता है, उस ग्रन्थ को वार्तिकज्ञ विद्वान् वार्तिक कहते हैं। नागेश भट्ट ने वार्तिक का लक्षण इस प्रकार किया है–

सूत्रेऽनुक्त–दुरुक्त–चिन्ताकरत्वं वार्तिकत्वं

उक्तानुक्त–दुरुक्त–चिन्ताकरत्वं हि वार्तिकम्।।

अर्थात् सूत्र में उक्त (कहे गए), अनुक्त (नहीं कहे गए) अथवा दुरुक्त (अनुचित कहे गए) विषयों की चिन्ता या विश्लेषण करने वाला वाक्य वार्तिक कहलाता है।

पदमंजरी में यह पद्य त्रिमुनि के परस्पर सम्बन्ध को दर्शाता है –

यद् विस्मृतमदृष्टं वा, सूत्रकारेण तत स्फुटम्।

वाक्यकारो ब्रवीत्यव, तेनादृष्ट च भाष्यकृतम्।।

अर्थात् सूत्रकार के द्वारा जो विषय विस्मृत या अदृष्ट रहे गए उनका स्पष्टतः प्रतिपादन वाक्यकार (वार्तिककार) करते हैं और वार्तिकों में अदृष्ट विषयों का विवेचन भाष्यकार करते हैं।

कैयट ने वार्तिक ग्रन्थों को व्याख्यान–सूत्र कहा है। वार्तिकग्रन्थ 02 प्रकार के हैं। वे वार्तिक जिनकी रचना सूत्रों पर आधारित है और उन पर भाष्य की रचना की गयी है। अतः कात्यायन के वार्तिकों को भाष्यसूत्र कहा जाता है। दूसरे वार्तिक–ग्रन्थ वे हैं, जो भाष्यों पर आधारित हैं।

भर्तृहरि ने वार्तिकों के रहस्योद्घाटन करते समय वार्तिकों को भाष्यसूत्र की संज्ञा दी है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने वार्तिक के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट करते हुए पतंजलि के अनुसार उक्तानुक्तचिन्ता तथा प्रत्याख्यान को ही वार्तिक की संज्ञा दी है। जिसमें अल्पबुद्धि वालों के लिए उक्तानुक्तचिन्ता की अपेक्षा है तथा पाठकों श्रोताओं के लिए प्रत्याख्यान आवश्यक है।

2.7 आचार्य कात्यायन की संस्कृत–व्याकरण को देन

कात्यायन के वार्तिक पाणिनीय व्याकरण के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इन वार्तिकों के बिना पाणिनीय व्याकरण अधूरा सा रह जाता। यद्यपि वार्तिक पाणिनि सूत्रों के व्याख्यान ही हैं, तथापि वार्तिक मौलिक हैं। कात्यायन केवल स्मृतिकार और वार्तिककार ही नहीं अपितु महाकवि भी थे। इनके स्वर्गारोहण नामक काव्य की प्रशंसा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है जैसे–

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गं आनीतवान् भुवि ।

काव्येन रुचरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः।।

न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितिवार्तिकैर्यः।

काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्म दक्षः।।

पाणिनि सूत्रों पर वार्तिकों की रचना द्वारा प्रसिद्ध आचार्य कात्यायन ने स्वर्गारोहण नामक काव्य की रचना करके पृथ्वी में स्वर्ग को ले आये। कविकर्म में

निपुण आचार्य कात्यायन ने वार्तिक सूत्रों से न केवल व्याकरण को पुष्पित किया अपितु काव्य रचना के द्वारा काव्य विद्या को भी समृद्ध किया।

पाणिनीय व्याकरण की परम्परा में आचार्य कात्यायन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके वार्तिक–पाठ के बिना पाणिनीय व्याकरण अधूरा ही रहता। आचार्य कात्यायन ने वार्तिकों की रचना करके पाणिनीय व्याकरण को समृद्ध किया। यही कारण है कि पाणिनीय व्याकरण के आगे अन्य कोई व्याकरण टिक नहीं सका।

2.8 पतंजलि का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्र व कात्यायन के वार्तिकों की रचना के बाद व्याकरण वाङ्मय में पतंजलि का प्रादुर्भाव होता है। पतंजलि ने पाणिनीय व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण व्याख्या लिखी, जिसे संस्कृत वाङ्मय में 'महाभाष्य' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है।

विविध ग्रन्थों में पतंजलि के अन्य नाम प्राप्त होते हैं। उन्हें गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत, शेषराज, शेषाहि, चूर्णिकार और पदकार आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। यादवप्रकाश कोष में गोनर्दीय को पतंजलि का पर्याय माना है। महाभाष्य की व्याख्या में कैयट ने पतंजलि के लिए नागनाथ नाम का प्रयोग किया है।

पतंजलि के विषय में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, अतः विद्वानों ने महाभाष्य में वर्णित संकेतों के आधार पर ही उनका काल निर्धारण किया है। आधुनिक इतिहास अन्तः साक्ष्यों के आधार पर महर्षि पतंजलि को शुंग–वंशीय शासक पुष्यमित्र शुंग का समकालिक मानते हैं। इतिहासकार पतंजलि द्वारा महाभाष्य में वर्णित "इह पुष्यमित्रं याजयामः" वाक्य के आधार पर प्रयुक्त वर्तमान कालिक क्रिया के प्रयोग से सिद्ध करते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी इनके समय को 200 विक्रम पूर्व अर्थात् 150 ई. पू. के लगभग स्वीकार किया है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने पतंजलि के काल को 2000 विक्रम पूर्व का स्वीकार किया है। उनका मानना है कि पतंजलि का समय विक्रम पूर्व 1200 से उत्तरवर्ती नहीं हो सकता है।

पतंजलि की माता का नाम गोणिका रहा होगा। कुछ विद्वानों के अनुसार गोनर्दीय शब्द से ज्ञात होता है, कि उनका जन्म–स्थान गोनर्द रहा होगा। यह स्थल वर्तमान में गोण्डा जिले के आसपास का क्षेत्र है। इनके जन्मस्थान के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। महाभाष्य से प्रतीत होता है कि ये अधिकतर

पाटलिपुत्र में निवास करते थे तथा मथुरा, साकेत, कौशाम्बी आदि स्थलों से भलीभान्ति परिचित थे। कश्मीर के राजा अभिमन्यु और जयापीड ने अनेक बार महाभाष्य को उद्धृत किया है, जिससे प्रतीत होता है कि पतंजलि का कश्मीर से कोई विशिष्ट सम्बन्ध रहा होगा।

2.9 पतंजलि का जीवन–चरित

पतंजलि के जीवन–चरित के बारे में प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं होती है। रामभद्र दीक्षित ने 'पतंजलि–चरित' में इन्हें शेषावतार बताया है। इस ग्रन्थ के अनुसार भगवान विष्णु शिव के ताण्डव नृत्य को देखते हुए मग्न हो गए थे। उनके भार से शेषनाग को अत्यन्त त्रास हुआ। ध्यान की समाप्ति पर जब शेष ने उनसे अधिक भार का कारण पूछा तो विष्णु ने शिव के मनोरम ताण्डव नृत्य का वर्णन किया, जिसे सुनकर शेष के मन में भी ताण्डव देखने की इच्छा हुई। शेष के अनुनय करने पर विष्णु ने आशीर्वाद दिया कि भगवान् महेश्वर की कृपा से पाणिनि ने जिस व्याकरणशास्त्र की रचना की, उस पर कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की है। वे वार्तिक अत्यन्त कठिन हैं, इसलिए भगवान् नीलकण्ठ तुम्हें उन वार्तिकों का भाष्य करने की आज्ञा देंगे। तब तुम उनकी आज्ञा से भूलोक पर अवतार लेकर चिदम्बर–क्षेत्र में जाओगे तब भगवान शिव के ताण्डव नृत्य का दर्शन करोगे। एक समय अपने स्वरूपानुरूप माता की चिन्ता में भ्रमण करते समय तपोवन में शेष ने गोणिका नाम की मुनि कन्या देखी, जो पुत्र प्राप्ति की इच्छा से तप में रत थी। उसे देखकर शेष ने मन ही मन माता रूप में स्वीकार कर लिया। एक दिन जब गोणिका भगवान सूर्य को अर्घ्य समर्पित कर रही थी, तभी शेष तापस का रूप धारण कर अंजलि से नीचे गिर पड़े और जैसे ही प्रणाम के लिए माता के चरणों में झुके, तभी माँ ने उठाकर उनसे कहा– तुम मेरी अंजलि से नीचे गिरे हो, अतः तुम्हारा नाम पतंजलि होगा। पतंजलि ने बाल्यकाल में कठोर तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न किया और चिदम्बर–तीर्थ में शिव के नृत्य का दर्शन किया। वहीं शिव ने उन्हें पदशास्त्र वार्तिकों पर भाष्य करने की आज्ञा दी। जिस पर पतंजलि ने व्याख्या की। अध्यापन करते समय पतंजलि उनके शिष्यों के बीच परदा रहता था। एक ही समय विभिन्न विषयों की व्याख्या निरन्तर सुनते हुए शिष्यों को बड़ा आश्चर्य होता था। एक दिन शिष्यों ने जैसे ही पर्दा उठा कर देखा वैसे ही वे सभी शेष के तेज से भस्म हो गए। उस समय लघुशंका हेतु बाहर गया हुआ केवल एक शिष्य ही इससे बच पाया। उसको बिना आज्ञा बाहर जाने के अपराध में पतंजलि ने राक्षस होने का शाप दिया। शिष्य के अनुनय करने पर पतंजलि ने यह आज्ञा दी कि 'पच्' धातु से निष्ठा प्रत्यय में क्या रूप बनेगा? इस प्रश्न का जो सही उत्तर दें उसे ही तुम भाष्य पढ़ाना। इससे तुम राक्षस शरीर के शाप से मुक्त हो जाओगे। तत्पश्चात् पतंजलि गोनर्द देश गए और माता के स्वर्गस्थ हो

जाने पर उन्होंने शेष रूप को प्राप्त किया। यद्यपि इस कथानक में कल्पनांश को नकारा नहीं जा सकता है, तथापि यह बात सिद्ध होती है कि वे गोणिकापुत्र गोनर्द निवासी थे। महाभाष्यकार ने भी स्वयं 'गोनर्दीयस्तवाह' का प्रयोग किया है। नागेश, भर्तृहरि तथा कैयट आदि भी गोनर्दीय को पतंजलि का नाम ही स्वीकार करते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक प्रमाण देते हुए यह स्वीकार करते हैं कि पतंजलि मूलतः कश्मीर के रहने वाले थे।

2.10 पतंजलि की संवाद–शैली

भाष्यकार पतंजलि ने सरल और सरस भाषा को संवाद रूप देकर प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया है। इस प्रकरण को आचार्य बलदेव उपाध्याय ने उदाहरण से प्रस्तुत किया है। एक शब्द के साधुत्व के प्रयोग के विषय में वैयाकरण और सूत के मध्य वार्तालाप है–

वैयाकरण– इस रथ का प्रवेता (बुनने वाला) कौन है?

सूत– आयुष्मन्! मैं रथ का प्राजिता (हांकने वाला) हूँ।

वैयाकरण– 'प्राजिता' तो अपशब्द है।

सूत– देवानां प्रिय (महोदय) आप प्राप्तिज्ञ हैं, इष्टिज्ञ नहीं। यह प्रयोग इष्ट है, यही रूप अभिलषित है।

वैयाकरण– अहो, यह दुष्ट सूत (दुरुत) हमें बाधा पहुँचा रहा है।

सूत– आपका दुरुत प्रयोग ठीक नहीं है। सूत शब्द 'सू' (प्रसव उत्पन्न करना) धातु से निष्पन्न है, वेञ् धातु (बुनना) से नहीं है। यदि आपको निन्दा अभीष्ट हो, तो 'दुःसूत' शब्द का प्रयोग करें।

इस संवाद से प्राप्तिज्ञ, इष्टिज्ञ, देवानां प्रिय आदि शब्दों के प्रयोग से यह विदित होता है कि लोक में व्यवहृत शब्द अधिक उपयुक्त माने जाते हैं। महाभाष्य में पतंजलि ने लोक व्यवहार में उपयोग में आने वाली भाषा का प्रयोग किया है। महाभाष्य में अर्थगर्भित शब्द प्रयोग किये गए हैं, जिनसे सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ प्राप्त होता है। यथा–

काकपेया नदी– कम क्षीण जल वाली।

शब्दगडुमात्रम्– शब्दों का व्यर्थ प्रयोग।

समाश– सहभोज।

वहंलिट्– चलते–चलते खेत चलने वाला बैल या पशु।

उष्णक– शीघ्र करने योग्य कार्य को शीघ्रता से करने वाला।

शीतक– शीघ्र करने योग्य कार्य को धीरे से करने वाला।

पुष्पक– आँख में फुल्ली वाला व्यक्ति।

विपादिका– पैरों का फोड़ा।

विप्रलाप– परस्पर विरुद्ध बोलना।

चाचा– तृणमयः पुमान्, खेत में घास से बनाई हुई आकृति जो पशुओं को डराने के लिए होती है।

पार्श्वक– सीधे ढंग से करने योग्य काम को कपट उपायों से करने वाला व्यक्ति।

केशक– बालों की चाह वाला व्यक्ति।

महाभाष्य में अनेक सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये सूक्तियाँ उदाहरण रूप में तथा तथ्य के प्रकटन रूप में प्राप्त होती हैं। अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए भाष्यकार ने इनका प्रयोग किया है। कतिपय उदहारण द्रष्टव्य हैं–

1. बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।
2. पर्याप्तो ह्येकः पुलाकः स्थाल्या निदर्शनाय।
3. समानगुणा एव स्पर्धा भवति, न हि आढ्याभिरूपौ स्पर्धेते।
4. आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे।

2.11 पतंजलि का कर्तृत्व

पतंजलि की महाभाष्य रचना प्रसिद्ध है। महाभाष्य में अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या न होकर उसके वार्तिकों के व्याख्यान हैं। पतंजलि से पूर्व कात्यायन ने अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे। उन्हीं वार्तिकों का यथार्थ परीक्षण कर पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की। महाभाष्य के आधार पर ही भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की तथा नागेश भट्ट ने मंजूषा के निमित्त सिद्धान्तरत्नों की रचना की। इस ग्रन्थ की महत्ता न केवल व्याकरण में ही अपितु अन्य शास्त्रों के लिए भी लाभकारी, सुग्राह्य है। महाभाष्य को पतंजलि मुनि ने आह्निकों में विभक्त किया। विष्णुधर्मोत्तर में भाष्य का लक्षण दिया है–

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।

स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः।।

अर्थात् जिस ग्रन्थ में सूत्रार्थ, सूत्रानुसारी वाक्यों–वार्तिकों तथा अपने पदों का व्याख्यान किया जाता है, उसे भाष्य को जानने वाले भाष्य कहते हैं।

महाभाष्य में 85 आह्निक हैं, आह्निक का तात्पर्य है एक दिन में पढ़ा जाने योग्य। इस प्रकार पतंजलि ने सम्पूर्ण महाभाष्य को 85 दिनों में शिष्यों को पढ़ाया। अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की व्याख्या पतंजलि ने महाभाष्य के 9 आह्निकों में की है। इन आह्निकों का अध्ययन–अध्यापन प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि प्रचलित है। महाभाष्य के प्रथम आह्निक को पतंजलि ने पस्पश–आह्निक की संज्ञा दी है। जिसका अर्थ है दूर से किसी वस्तु का निरीक्षण करना अथवा किसी वस्तु को निर्बाध रूप से देखना। पस्पश–आह्निक में अष्टाध्यायी के प्रतिपाद्य विषय की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। अतः विषय गम्भीरता की दृष्टि से महाभाष्य के पस्पश–आह्निक का संक्षिप्त परिचय किया जाना आवश्यक है। महाभाष्य का प्रारम्भ "अथ शब्दानुशासनम्" इस मंगलपद से हुआ है। इस सूत्र में आचार्यों द्वारा "अथ" शब्द को मंगलवाची माना गया है। आचार्य शंकर ने भी "अथ" को मंगलवाची माना है। महाभाष्यकार ने "अथ" शब्द का मुख्यतः अधिकार अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस शास्त्र का क्षेत्र लौकिक शब्दों तथा वैदिक शब्दों दोनों से है। शब्द की परिभाषा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिसके उच्चारित होने से सास्ना, लांगूल, ककुद खुर विषाण वाले(द्रव्यों) की प्रतीति होती है, वह शब्द है– "येनोच्चारितेनसास्नालांगूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः"। इसी को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि लोक में जिससे अर्थ की प्रतीति होवे ऐसी ध्वनि शब्द कहलाती है– 'अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते'। इस प्रकार व्याकरण के मूलभूत शब्द को ध्वनिपरक माना है अर्थात् शब्द–द्रव्य, गुण, क्रिया तथा आकृति से भिन्न है। भाष्यकार ने व्याकरण के प्रयोजनों का मुख्यतया वर्णन किया है। उन्होंने व्याकरण के 5 मुख्य प्रयोजन माने हैं, रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असंदेह– 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः'।

वेदों की रक्षा के लिए, विभक्तियों के विपरिणाम जानने के लिए, वेद का अध्ययन करने के लिए, संक्षिप्तता के लिए, सन्देह के निवारण के लिए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए।

व्याकरण में शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध को नित्य स्वीकार किया है। भाष्यकार ने भी शब्दार्थ के सम्बन्ध को नित्य माना है। उन्होंने नित्य शब्द के स्थान पर सिद्ध शब्द का प्रयोग किया है– "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"।

व्याकरण की परिभाषा करते हुए भाष्यकार कहते हैं– "लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्" अर्थात् लक्ष्य और लक्षण दोनों को मिलाकर ही व्याकरण शब्द का अर्थ बनेगा। लक्ष्य–लक्षण मिला हुआ जो समुदाय है, वही व्याकरण होगा। यहाँ लक्ष्य की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते हैं– लक्ष्य है शब्द और लक्षण है सूत्र।

पतंजलि के सम्प्रति तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं– निदान सूत्र, योगदर्शन और महाभाष्य। श्री युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार निदानसूत्र, पातंजलशाखा और योगदर्शन का रचयिता पतंजलि एक ही व्यक्ति है। किन्तु महाभाष्यकार पतंजलि इनसे भिन्न हैं। उनकी अपेक्षा महाभाष्यकार अर्वाचीन आचार्य हैं। श्री मीमांसक जी ने अपनी पुस्तक में महाभाष्यकार पतंजलि की लगभग 7 रचनाओं का उल्लेख किया है –

महानन्दकाव्य– महाराजा समुद्रगुप्त कृत कृष्णचरित से ज्ञात होता है, कि पतंजलि ने महानन्द नामक महाकाव्य की रचना की थी।

चरक का परिष्कार– श्री पण्डित गुरुपद हालादार ने वृद्धत्रयी में वर्णित किया कि पतंजलि ने आयुर्वेदीय चरक संहिता पर वार्तिक ग्रन्थ लिखा था।

सिद्धान्त सारावली– यह वैद्यक ग्रन्थ पतंजलि विरचित है।

कोष– कोष टीकाओं में भी वासुकि, शेष, भोगीन्द्र आदि नामों से किसी कोष ग्रन्थ का वर्णन मिलता है।

2.12 संस्कृत–व्याकरण को पतंजलि की देन तथा "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्" की व्याख्या

महाभाष्य की रचना द्वारा आचार्य पतंजलि ने व्याकरण–शास्त्र को समृद्ध किया। महाभाष्य, व्याकरण–शास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। पतंजलि ने महाभाष्य में व्याकरण की दार्शनिक शब्दनित्यत्ववाद या स्फोटवाद अथवा शब्दब्रह्मवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त को भर्तृहरि ने विस्तार से वाक्यपदीय में पल्लवित किया है। साहित्यिक दृष्टि से महाभाष्य का गद्य अत्यन्त सरल, सरस, मुहावरेदार, धाराप्रावाहिक और स्पष्टार्थबोध है। व्याकरणशास्त्र के इतिहास में पाणिनीय व्याकरण की शाखा के अतिरिक्त पूर्व और परवर्ती अनेक व्याकरण शाखाएँ विद्यमान रही हैं। किन्तु "मुनित्रय" से संवर्धित और समर्थित व्याकरण की पाणिनीय शाखा की जो प्रसिद्धि, मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुयी, वह अन्य शाखाओं को नहीं मिल सकी। जिसमें महाभाष्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कात्यायन ने अष्टाध्यायी पर वार्तिकों की रचना करके व्याकरण सिद्धान्तों को अधिक पूर्ण और स्पष्ट बनाया। पतंजलि ने मुख्यतः वार्तिकों की व्याख्या को महाभाष्य द्वारा आगे बढ़ाया। अनेक स्थलों पर उन्होंने कात्यायन मत का प्रत्याख्यान और पाणिनि मत की मान्यता भी सिद्ध की है। कभी–कभी उन सूत्रों की भी विवेचना की है, जो कात्यायन से छूट गए थे। आचार्य पंतजलि का संस्कृत व्याकरण को एक अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान है कात्यायन के वार्तिकों का संरक्षण। सम्प्रति कात्यायन का वार्तिक–ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। महाभाष्य में व्याख्यायित वार्तिकों से ही कात्यायन के वार्तिकों की पहचान होती है। महाभाष्य में पतंजलि ने तत्कालिक भारत के

सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक न्याय, प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन किया है। जो इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने लिखा है –

कृतेऽथ पतंजलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना।

सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने।।

पाणिनि व्याकरण 'त्रिमुनि' नाम से जाना जाता है। पाणिनि व्याकरण के 3 रचयिता हैं– पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि। कालक्रम से जो उत्तरोत्तर परवर्ती थे अर्थात् सबसे पहले पाणिनि, फिर कात्यायन तत्पश्चात् पतंजलि। किन्तु व्याकरण–परम्परा में पतंजलि का मत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। व्याकरण–परम्परा का मानना है, कि– "यथोत्तर मुनीनां प्रामाण्यम्" अर्थात् उत्तरोत्तर मुनि का मत प्रामाणिक है। इस सिद्धान्त के अनुसार पाणिनि से बढ़कर कात्यायन का तथा कात्यायन से बढ़कर पतंजलि का प्रामाण्य है। जहां सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य में परस्पर विरोध उत्पन्न होता है, वहाँ महाभाष्य को ही प्रमाण माना जाता है। इसका तात्पर्य कथमपि यह नहीं है कि पतंजलि और कात्यायन के मत प्रामाणिक नहीं हैं, प्रत्युत परवर्ती मुनि के तात्पर्य में ही उनका तात्पर्य है। यथा –

पाणिनि ने 'न धातुलोप आर्धातुके' सूत्र में बताया है कि धात्वंशलोप निमित्तक आर्धातुक परे रहने पर इक् को गुण तथा वृद्धि नहीं होती है, जिसके उदहारण मरीमृजक, लोलुव आदि हैं। परन्तु पतंजलि ने इस सूत्र के विषय में कहा है, कि सर्वत्र अकार के लोप करने पर उसके स्थानिवद्भाव होने से गुण वृद्धि नहीं होगी तब सूत्र का प्रयोग ही क्या है। अर्वाचीन वैयाकरण इस सूत्र के सम्बन्ध में पतंजलि के मत को ही प्रमाण मानते हैं।

2.13 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1– कात्यायान को अन्य नाम से जाना जाता है –

(a) सूत्रकार (b) गद्यकार (c) वार्तिककार

2– विद्वानों ने कात्यायन को किस स्थान का निवासी बताया है

(a) पौर्वात्य (b) पाश्चिमात्य (c) दाक्षिणात्य

3– वासुदेव शरण अग्रवाल ने पाणिनीय सूत्रों पर कात्यायन के कितने वार्तिकों का उल्लेख किया है–

(a) 4000 (b) 5000 (c) 3000 (d) 4263

4– निम्न में से कौन सी रचना कात्यायन की नहीं है –

(a) स्वर्गारोहण काव्य　　(b) भ्राज–संज्ञक श्लोक

(c) वार्तिक पाठ　　(d) जाम्बवती परिणय

5– पतंजलि ने व्याकरण के मुख्य प्रयोजनों की संख्या बतायी है –

(a) 06　　(b) 04　　(c) 10　　(d) 05

6– महाभाष्य में आह्निकों की संख्या है–

(a) 55　　(b) 70　　(c) 85　　(d) 108

7– महाभाष्य का पस्पश–आह्निक नाम है–

(a) प्रथम आह्निक का　　(b) पंचम आह्निक का

(c) सप्तम आह्निक का　　(d) नवम आह्निक का

8– पतंजलि के अनुसार व्याकरण की परिभाषा में लक्ष्य है–

(a) सूत्र　　(b) शब्द

लघु–उत्तरीय प्रश्न –

1– वार्तिक का लक्षण स्पष्ट कीजिए?

2– महाभाष्य की संवाद शैली संक्षेप में वर्णित कीजिये ?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– कात्यायन के जन्म–समय एवं जन्म–स्थान का उल्लेख करते हुए उनके कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए?

2– पतंजलि के जन्म–समय एवं कर्तृत्व का उल्लेख कीजिए?

इकाई–3 आचार्य भट्टोजिदीक्षित, आचार्य वरदराज एवं आचार्य नागेश भट्ट

इकाई की रूपरेखा

3.1– इकाई परिचय

3.2– उद्देश्य

3.3– आचार्य भट्टोजिदीक्षित का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

3.4– भट्टोजिदीक्षित का कर्तृत्व

3.4.1– शब्द कौस्तुभ

3.4.2– सिद्धान्तकौमुदी

3.4.3– प्रौढमनोरमा

3.5– आचार्य वरदराज का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

3.6– कर्तृत्व एवं आचार्य वरदराज की व्याकरण–शास्त्र को देन

3.7– नागेश भट्ट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

3.8– कर्तृत्व

3.9– वैशिष्ट्य तथा गुरु–शिष्य परम्परा

3.10– व्याकरणशास्त्र को नागेश भट्ट की देन

3.11– बोध प्रश्न

3.1 इकाई परिचय

संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार नाम क प्रश्न–पत्र परास्नातक तृतीय सेमेस्टर के प्रथम–प्रश्न–पत्र के रूप में निर्धारित किया गया है। खण्ड–1 व्याकरण शास्त्र की इकाई–3 आचार्य भट्टोजि दीक्षित, आचार्य वरदराज एवं आचार्य नागेश भट्ट के व्यक्तित्व–कर्तृव्य से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित आचार्यों के जीवन परिचय एवं उनके द्वारा प्रणीत रचनाओं के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

3.2 उद्देश्य– इस ईकाई के अध्ययन शिक्षार्थी :

- भट्टोजिदीक्षित के जन्म–समय के विषय में अवगत हो सकेंगे।
- भट्टोजिदीक्षित के जन्म–स्थान के बारे में जान सकेंगे।

- आचार्य वरदराज का जीवन–परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- लघुसिद्धान्तकौमुदी का बोध हो सकेगा।
- नागेश भट्ट के विषय में जान सकेंगे।
- नागेश भट्ट की रचनाओं से अवगत हो सकेंगे।
- नागेश भट्ट की गुरु–परम्परा के बारे में जान पायेंगे।

3.3 आचार्य भट्टोजिदीक्षित का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की प्राचीन परिपाटी में पाणिनीय सूत्रपाठ के क्रम को आधार माना जाता था। यह क्रम प्रयोग सिद्धि की दृष्टि से कठिन था। क्योंकि एक ही शब्द की सिद्धि के लिए विभिन्न अध्यायों से सूत्र लगाने पड़ते थे। इस कठिनाई के कारण ऐसी पद्धति की आवश्यकता हुई, जिसमें प्रयोगों की सिद्धि के लिए आवश्यक सूत्र एक ही जगह उपलब्ध हो जायें। इस दिशा में आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने प्रक्रियाकौमुदी के आधार पर सिद्धान्तकौमुदी की रचना की और स्वयं इस पर टीका लिखी।

भट्टोजिदीक्षित के समय निर्धारण में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, पं.युधिष्ठिर मीमांसक ने अन्य विद्वानों के मतों को अपनी पुस्तक में इस प्रकार उद्धृत किया है–

डा वेल्वेल्कर– संवत् 1657–1707 वि.

डा तालात्तीर– संवत् 1575–1625 वि.

डा राव– 1570–1635 वि.

कीथ– विक्रम की 17वीं शती

विंटरनित्ज– 1625 संवत्

डा पी.वी.काणे– संवत् 1580 से 1630

श्री मीमांसक भट्टोजिदीक्षित का समय 1570 से 1650 विक्रमी संवत् के मध्य का निर्धारित करते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भट्टोजिदीक्षित का समय विक्रम संवत् की 16वीं शताब्दी का मध्यकाल का अन्तिम चरण माना है।

भट्टोजिदीक्षित प्रकाण्ड वैयाकरण थे। ये महाराष्ट्र प्रान्त के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मीधर और छोटे भाई रङ्गोजिभट्ट थे। इनका वंश इस प्रकार है–

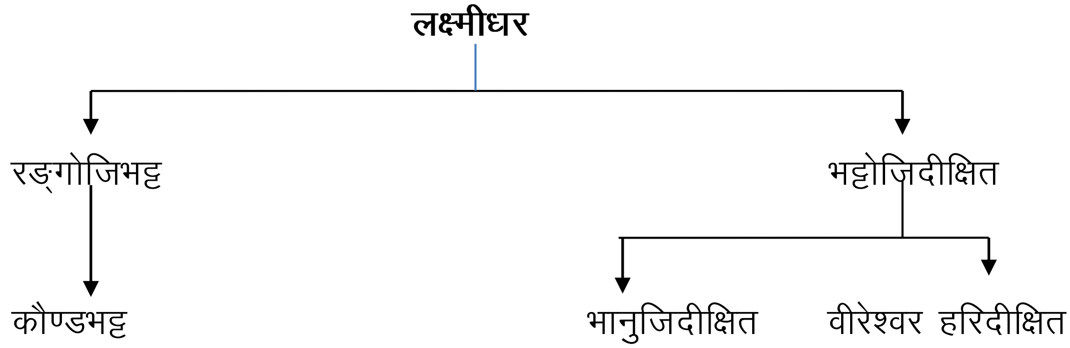

भट्टोजिदीक्षित ने नरसिंह पुत्र शेषकृष्ण से व्याकरण का अध्ययन किया था। शब्दकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षित ने शेष कृष्ण के लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया है।

3.4 भट्टोजिदीक्षित का कर्तृत्व

भट्टोजिदीक्षित ने व्याकरण–ग्रन्थों की रचना की। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र तथा वेदान्त विषय से सम्बन्धित ग्रन्थों की भी रचना की। उनके धर्मशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ–

(i) आशौच–प्रकरण

(ii) त्रिस्थली–सेतु

भट्टोजिदीक्षित के वेदान्त से सम्बन्धित ग्रन्थ –

(i) वेदान्ततत्त्व–कौस्तुभ या तत्त्वकौस्तुभ

(ii) दीपनव्याख्या या तत्त्वविवेक टीका विवरण

अन्य विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थ –

(i) तन्त्राधिकार–निर्णय

(ii) वेदभाष्यसार

(iii) तत्त्वसिद्धान्त–दीपिका

भट्टोजिदीक्षित के व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थ –

(i) शब्दकौस्तुभ

(ii) सिद्धान्तकौमुदी

(iii) प्रौढमनोरमा

(iv) धातुपाठनिर्णय

(v) लिङ्गानुशासन वृत्ति

3.4.1–शब्दकौस्तुभ– भट्टोजिदीक्षित ने अष्टाध्यायी सूत्र क्रमानुसार शब्दकौस्तुभ नामक वृत्ति की रचना की थी। इसका उल्लेख वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के अन्त में भी आता है–

इत्थं लौकिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम्।

विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे।।

शब्दकौस्तुभ में भट्टोजि ने यह दिखाया है, कि पाणिनि के सूत्रों पर और कुछ कहा जा सकता है। सम्प्रति शब्दकौस्तुभ के प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ अध्याय तथा तृतीय अध्याय के मात्र दो पाद ही उपलब्ध हैं।

3.4.2–सिद्धान्तकौमुदी– अध्ययन–अध्यापन की सुगमता हेतु प्रक्रिया ग्रन्थों की रचनाओं में वैयाकरण प्रवृत्त हुए। क्योंकि अष्टाध्यायी का सम्पूर्ण अध्ययन करने पर ही व्याकरण का ज्ञान होता है, जबकि प्रक्रिया–ग्रन्थों का प्रकरण सम्बन्धित अध्ययन करने से ही उस प्रकरण का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। भट्टोजिदीक्षित ने प्रक्रिया–पद्धति का अनुसरण करके सिद्धान्तकौमुदी की रचना की। उन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों का क्रम परिवर्तन करते हुए उपयुक्त शीर्षकों के अन्तर्गत एकत्र किया, और उनकी व्याख्या की। इसमें अष्टाध्यायी के समस्त सूत्र तत्–तत् प्रकरणों में समाहित किए गए हैं। सिद्धान्तकौमुदी में समस्त धातुओं के रूपों का विवेचन, लौकिक संस्कृत के व्याकरण का विश्लेषण, वैदिक–प्रक्रिया एवं स्वर–प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। इस प्रकार सिद्धान्तकौमुदी अधिक व्यवस्थित है तथा सरलता से समझी जा सकती है। इस ग्रन्थ को "वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी" नाम से भी जाना जाता है। व्याकरण–ग्रन्थों में यह अत्यन्त लोकप्रिय है। महाभाष्य को समझने में अत्यन्त उपयोगी है। इसकी महत्ता को देखकर ही विद्वानों में यह उक्ति प्रचलित हुयी –

कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।

कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

3.4.3–प्रौढमनोरमा– भट्टोजिदीक्षित ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढमनोरमा नामक टीका लिखी। इसमें खण्डन–मण्डन की अधिकता है। भट्टोजि की महाभाष्य पर दृढ़ आस्था थी। जिस कारण उन्होंने अपने गुरु शेषकृष्ण के मतों का भी खण्डन किया है। बाद में शेषकृष्ण के पुत्र शेष वीरेश्वर के शिष्य पण्डितराज जगन्नाथ ने "मनोरमा–कुचमर्दन" लिखकर भट्टोजिदीक्षित के मतों का खण्डन किया। अपने पिता भट्टोजिदीक्षित के मतों का समर्थन करने के लिए भानुजिदीक्षित ने "मनोरमा–मण्डन" की रचना की।

3.5 आचार्य वरदराज का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

लघुकौमुदी के अमेरिका में सुरक्षित लिखित हस्तलेख जो 1624 ई. का है, से ज्ञात

होता है कि 1624 ईसवी तक वरदराज ने अपने ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ कर दी थी। लघुकौमुदी का हस्तलेख जब 1624 ईसवी का है तब इसकी तथा मूल ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी का रचनाकाल इससे पूर्व होना चाहिए जो कि 1600 ई. के लगभग निर्धारित होता है। अतः आचार्य वरदराज का समय 1600–1650 ईसवी तक निर्धारित होता है।

वरदराज भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। मध्यसिद्धान्तकौमुदी में उन्होंने स्पष्ट लिखा है–

नत्वा वरदराजश्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्।

करोति पाणिनीयाम् मध्यसिद्धांतकौमुदीम्।।

इस प्रकार वरदराज का समय 17वीं शताब्दी है। वरदराज के पिता दुर्गातनय थे। वरदराज दक्षिण भारत के निवासी थे। जनश्रुति है कि योग्य शिष्य न मिलने के कारण भट्टोजिदीक्षित प्रेत बन गए थे। वरदराज दक्षिण भारत से भट्टोजि से व्याकरण पढ़ने के लिए जब काशी पहुँचे तब तक दीक्षित जी का स्वर्गवास हो चुका था। किसी प्रकार दोनों का मिलन हुआ और भट्टोजि ने अपनी शास्त्र–विद्या वरदराज को दान करके प्रेत योनि से छुटकारा पाया।

3.6 कर्तृत्व एवं आचार्य वरदराज की व्याकरण–शास्त्र को देन

आचार्य वरदराज की चार रचनायें प्राप्त होती हैं–

(i) लघुसिद्धान्तकौमुदी

(ii) मध्यसिद्धान्तकौमुदी

(iii) गीर्वाणपदमंजरी

(iv) सारसिद्धान्तकौमुदी

उपर्युक्त ग्रन्थों में से लघुसिद्धान्त, मध्यसिद्धान्तकौमुदी तथा सारसिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदी के संक्षिप्त संस्करण हैं। वरदराज ने प्रक्रिया–ग्रन्थ के सर्वप्रथम ग्रन्थ रूपावतार को आधार बनाकर 'लघुसिद्धांतकौमुदी' की रचना की। इसे 'लघुकौमुदी' भी कहा जाता है। पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों को सरल और सुगम विधि से ज्ञान कराना लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना का उद्देश्य था। इसमें 1272 पाणिनि सूत्र संकलित हैं। संस्कृत व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान हेतु यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। इसमें केवल लौकिक संस्कृत सम्बन्धी नियमों का संकलन है।

आचार्य वरदराज ने लघुकौमुदी व सिद्धान्तकौमुदी के मध्य सेतुरूप 'मध्यसिद्धान्त– कौमुदी' की रचना की। इसमें वैदिक व्याकरण सम्बन्धी नियमों का भी समावेश है। मध्यसिद्धान्तकौमुदी में अष्टाध्यायी के 2315 सूत्रों का संकलन है।

'सारसिद्धान्तकौमुदी' अत्यन्त संक्षिप्त है। जिसमें 750 पाणिनीय सूत्रों का समावेश है।

'गीर्वाणपदमंजरी' साहित्यिक, सामाजिक आदि विविध विषयों पर प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गयी रचना है।

व्याकरण–शास्त्र को वरदराज की देन इस तथ्य से स्पष्ट होती है, कि आज भी संस्कृत व्याकरण के प्रारम्भिक अध्येताओं के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी सार–स्वरूप है। आचार्य वरदराज ने यद्यपि व्याकरण–शास्त्र के क्षेत्र में कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं लिखा तथापि लघुसिद्धान्तकौमुदी के द्वारा उन्होंने पाणिनीय व्याकरण को लोकप्रिय बनाने में अपनी महती भूमिका निभायी।

3.7 नागेश भट्ट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

नागेश भट्ट नव्य वैयाकरण थे। अपने ग्रन्थ "शब्देन्दुशेखर" तथा "परमलघुमंजूषा" में वर्णित तथ्यों से इनके बारे में जानकारी प्राप्त होती है–

"शिवभट्टसुतो धीमान् सतीदेव्यास्तु गर्भजः, तथा इति श्रीमदुपाध्यायोपनामक शिवभट्टसुतसतीगर्भज–नागेशभट्टविरचितलघुशब्देन्दुशेखराख्ये सिद्धान्तकौमुदीव्याख्याने उत्तरार्धं समाप्तम्" से ज्ञात होता है, कि नागेश के पिता शिवभट्ट तथा माता का नाम सती देवी था। प्रसिद्धि है कि दूधविनायक मोहल्ले के चौराहे की वायव्य दिशा के कोण पर स्थित मकान नागेश भट्ट काले का था। वहाँ के लोगों का कहना है, कि इस मकान को नागेश ने अपनी पुत्री को दिया था, जिसमें वर्तमान में भी देव उपनाम कि उनके वंशज रहते हैं। नागेश भट्ट महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे, उनका उपनाम 'काले' था। उनका पूरा नाम नागेश शिवभट्ट काले था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत शास्त्रों का इतिहास' में नागेश के जन्म–समय का निर्धारण हेतु प्रमाण प्रस्तुत किए–

नागेश के सापिण्डय प्रदीप का हस्तलिखित 1803 ईस्वी का है। इसमें तीन आचार्यों का उल्लेख है –

शंकरभट्ट– जिनका समय 1540–1600 ई. था।

नन्दपण्डित– यह धर्म शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य थे। इनका समय लगभग 1595 ई. से 1630 ई. निर्धारित है।

अनन्तदेव– इन्होंने 'स्मृति–कौस्तुक' की रचना की। इनका समय 1645–1675 ई. है।

इस विवेचन से नागेश भट्ट के समय की पूर्व सीमा 1670 ईस्वी से पहले नहीं हो सकती है।

नागेश भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा' का उल्लेख अपने अन्य ग्रन्थ महाभाष्य 'प्रदीपोद्योत' में किया है, और महाभाष्य प्रदीपोद्योत में वैयाकरण सिद्धान्तमंजूषा का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इन दोनों ग्रन्थों की रचना एक साथ हुयी। इन दोनों की रचना 1700–1708 ईस्वी में हुयी होगी। यदि इस समय नागेश की अवस्था 30 वर्ष मानी जाये तो उनका जन्म 1670 –1680 के बीच ज्ञात होता है। कुछ विद्वान् नागेश भट्ट का जन्म लगभग 1675 ईसवी में मानते हैं।

महामहोपाध्याय दुर्गा प्रसाद द्विवेदी ने रसगङ्गाधर की भूमिका में लिखा है, कि महाराज सवाई जयसिंह जो जयपुर मण्डल के राजा थे, ने अश्वमेध यज्ञ कराने के लिए नागेश भट्ट को आमन्त्रित किया था। महाराज सवाई जयसिंह का समय 1688–1714 ई. निर्धारित है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि 17वीं शताब्दी में नागेश भट्ट विद्यमान थे।

जनश्रुति के अनुसार सवाई जयसिंह ने अश्वमेध यज्ञ करवाने हेतु नागेश भट्ट को आमन्त्रित किया। नागेश भट्ट ने काशी को छोड़ जयपुर जाना उचित न समझा। परन्तु अपनी निर्धनता को सोचकर जयपुर जाने के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। मार्ग में शृंगवेरपुर के राजा रामसिंह ने उनसे जयपुर न जाने का निवेदन किया और उनकी जीविकानिर्वाह का संकल्प लिया। राजा रामसिंह नागेश भट्ट का शिष्य हुआ और उसने अपने राज्य में नागेश भट्ट को राजगुरु के पद पर आसीन किया। यद्यपि नागेश का स्थान काशी था तथापि वे समय–समय पर शृंगवेरपुर जाते थे। नागेश भट्ट ने 'लघुशब्देन्दुशेखर' में लिखा है, कि वे राजा रामसिंह के आश्रित तथा गुरु थे–

"याचकानां कल्पतरोररिकक्षहुताशनात् शृंगवेरपुराधीशाद् रामतो लब्धजीविकः"

नागेश भट्ट ने व्याकरणशास्त्र का अध्ययन गुरु हरिदीक्षित से किया, जो भट्टोजिदीक्षित के पौत्र थे तथा न्यायशास्त्र का अध्ययन गुरु रामराय से किया था। नागेश ख्याति प्राप्त विद्वान् थे, किन्तु निर्धन थे। काफी समय तक इन्हें सन्तान प्राप्त न हुयी। प्रौढ़ावस्था में उन्हें कन्या की प्राप्ति हुयी जिसका विवाह उन्होंने

देव उपनाम के वर से किया था। नागेश के ईष्ट तथा कुलदेवता शिव–पार्वती थे।

3.8 कर्तृत्व

नागेश भट्ट व्याकरण, धर्मशास्त्र, साहित्य और योग के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने इन सभी विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की।

(i) **परिभाषेन्दुशेखर**– इस ग्रन्थ में व्याकरण की 133 परिभाषाएं संकलित की हैं। इसमें परिभाषाओं का अर्थ, तात्पर्य तथा उनकी आवश्यकता, सुन्दरता तथा प्रमाणों से इस प्रकार स्पष्ट की है, कि परिभाषोन्दुशेखर विद्वानों में अत्यन्त आदरणीय माना जाता है। जो परिभाषाएं पाणिनीय सूत्रों में नहीं हैं, वे परिभाषायें परिभाषेन्दुशेखर में ली गयी हैं। इसलिए ये परिभाषाएं पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों से अतिरिक्त हैं।

परिभाषा के 02 भेद हैं –

शास्त्रत्वसम्पादिका

शास्त्रत्वावच्छेदिका

प्रकरणों को तन्त्र नाम से व्यवहृत किया गया है। इसमें 03 प्रकरण हैं –

प्रथम– शास्त्रत्व–सम्पादनोद्देशप्रकरण

द्वितीय– बाधबीजप्रकरण

तृतीय– तन्त्रशेषप्रकरण

(ii) **बृहच्छब्देन्दुशेखर**

(iii) **लघुशब्देन्दुशेखर**

'बृहच्छब्देन्दुशेखर' तथा 'लघुशब्देन्दुशेखर' दोनों ग्रन्थ भट्टोजिदीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदी की टीकायें हैं। इन ग्रन्थों के द्वारा नागेश भट्ट ने सिद्धान्तकौमुदी के सिद्धान्तरत्नों को विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया।

(iv) **गुरुमंजूषा**

(v) **लघुमंजूषा**

(vi) **परमलघुमंजूषा**

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक पक्ष को सिद्ध करते हैं। षोड्श

दर्शनों में व्याकरणदर्शन की गणना भी की गयी है। लघुमंजूषा में अनेक प्रमाणों को उद्धृत किया है तथा स्फोट की सिद्धि की है। इसमें प्रतिपादित किया है कि स्फोट की सत्ता का तत्त्व के ज्ञान से ही निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है।

(vii) **उद्योतटीका**

(viii) **पातंजलदर्शनम्**

(ix) **प्रायश्चित्तेन्दुशेखर**

(x) **व्रात्यताप्रायश्चित**

(xi) **रसगंगाधर**

(xii) **काव्यप्रकाश की टीका**

(xiii) **न्यायशास्त्र विषयक न्यायमुक्तावली**

नागेश भट्ट ने लघुमंजूषा के अन्त में स्वयं के लिए "सर्वतन्त्रार्थ तत्त्वज्ञः" तथा "सर्वतन्त्र निबन्धकृत्" कहा है।

3.9 वैशिष्ट्य तथा गुरु–शिष्य परंपरा

नागेश व्याकरणशास्त्र के अप्रतिम विद्वान् थे। विविध विषयों पर ग्रन्थों का निर्माण कर उन्होंने व्याकरण अध्ययन–अध्यापन की नयी दृष्टि प्रदान की। महाभाष्य पर उनकी 'उद्योत' तथा प्रौढ़मनोरमा पर 'शब्देन्दुशेखर' ने इन महनीय ग्रन्थों के गम्भीर रहस्यों की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। परिभाषेन्दुशेखर में विशिष्ट अनुशीलन के द्वारा परिभाषाओं का स्वरूप, अर्थ तथा क्षेत्र का विशिष्ट प्रतिपादन किया। नागेश का 'वैयाकरण–सिद्धान्त–मंजूषा' सर्वाधिक मौलिक ग्रन्थ है, जो पाणिनीय दर्शन को विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। वस्तुतः व्याकरणदर्शन का जो सूत्रपात पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रस्तुत किया, उसे व्याडि ने संग्रह, भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में आगे बढ़ाया। वाक्यपदीय के लुप्तप्राय अध्ययन को नागेश भट्ट ने सिद्धान्तमंजूषा के द्वारा पुनर्स्थापित किया। व्याकरणदर्शन का शैवागम के साथ पूर्ण सम्बन्ध है, परन्तु आलोचकों के अनुसार नागेश ने पाणिनीय दर्शन की व्याख्या शैवागम की अपेक्षा अद्वैत–वेदान्त के आलोक में की है।

अधीत्य फणिभाषाऽब्धिं सुधीन्द्रहरिदीक्षितात्।

न्यायतन्त्रं रामरामाद् वादिरक्षोघ्नरामत।।

लघुमंजूषा में उल्लिखित इस श्लोक से ज्ञात होता है, कि नागेश ने व्याकरणशास्त्र का अध्ययन भट्टोजिदीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित से प्राप्त किया तथा न्यायशास्त्र का अध्ययन रामराम से किया था। नागेश भट्ट के प्रमुख शिष्य थे वैद्यनाथ पायगुण्डे। इन्होंने अपने गुरु नागेश द्वारा रचित ग्रन्थों की व्याख्या प्रस्तुत की –

शब्दकौस्तुभ की टीका	– प्रभा
शब्दरत्न की टीका	– भावप्रकाशिका
उद्योत की टीका	– छाया
लघुशब्देन्दुशेखर की टीका	– चिदस्थिमाला
परिभाषोन्दुशेखर की टीका	– गदा और काशिका
मंजूषा की टीका	– कला

वैद्यनाथ पायगुण्डे के पुत्र बालम्भट्ट थे। ये धर्मशास्त्री थे। इन्होंने 'मिताक्षरा' के ऊपर 'लक्ष्मी' व्याख्या लिखी। इन्होंने 'धर्मशास्त्र संग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की।

बालम्भट्ट के प्रमुख शिष्य मनुदेव थे। ये वैयाकरण थे। उन्होंने धर्मशास्त्र संग्रह की रचना में अपने गुरु का सहयोग किया था।

3.10 व्याकरणशास्त्र को नागेश भट्ट की देन

व्याकरणदर्शन का जो सूत्रपात पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रस्तुत किया उसे व्याडि ने 'संग्रह', भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में आगे बढ़ाया। वाक्यपदीय के लुप्तप्राय अध्ययन को नागेश भट्ट ने सिद्धान्तमंजूषा के द्वारा पुनर्स्थापित किया। 18 वीं सदी में नागेश द्वारा किए इस प्रयास के फलस्वरूप आज वाक्यपदीय के गम्भीर एवं सर्वांगीण अनुशीलन के प्रति विद्वान् आकृष्ट हुए। आज वर्तमान समय में वाक्यपदीय के महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने हेतु विद्वत् समाज नागेश भट्ट का सदैव ऋणी रहेगा। प्राचीन व्याकरण शास्त्रों में परिष्कारों का अभाव था। नागेश भट्ट ने ही न्यायशास्त्र की पद्धति पर व्याकरण शास्त्र में भी परिष्कारों का प्रारम्भ किया। परिष्कारों से सिद्धान्तों का महत्त्व अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। नागेश भट्ट के पश्चात् परिष्कारों की यह परम्परा बढ़ती चली गयी।

नागेश भट्ट के बृहच्छब्देन्दुशेखर तथा लघुशब्देन्दुशेखर की प्रसिद्धि तीव्र गति

से हुयी। इन ग्रन्थों का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। इन ग्रन्थों ने व्याकरण के क्षेत्र में नयी भूमिका का निर्वहन किया। तभी से व्याकरण की एक पृथक शाखा 'नव्यव्याकरण' के नाम से प्रारम्भ हुयी। नव्यव्याकरण की विशेषता प्रक्रियांश के साथ–साथ पारिभाषिक शब्दों के अर्थोन्मूलन की ओर प्रवृत्ति है।

3.11 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– सिद्धान्तकौमुदी के रचनाकार हैं

(a) वरदराज (b) नागेश भट्ट (c) भट्टोजिदीक्षित (d) भर्तृहरि

2– निम्न में से भट्टोजिदीक्षित की रचना नहीं है

(a) शब्दकौस्तुभ (b) सिद्धान्तकौमुदी

(c) प्रौढ़ मनोरमा (d) मनोरमा–मण्डन

3– लघुसिद्धान्तकौमुदी किस प्रकार की रचना है–

(a) काव्य (b) व्याकरणशास्त्र

(c) न्याय शास्त्र (d) प्रक्रिया ग्रन्थ

4– निम्न में से वरदराज की रचना नहीं है

(a) मध्यसिद्धान्तकौमुदी (b) सारसिद्धान्तकौमुदी

(c) गीर्वाणपदमंजरी (d) शब्देन्दुशेखर

5– नागेश भट्ट के किस ग्रन्थ में परिभाषाओं का संकलन है

(a) शब्देन्दुशेखर (b) लघुमंजूषा

(c) पातंजलदर्शन (d) परिभाषेन्दुशेखर

6– निम्न में से नागेश भट्ट की रचना नहीं है

(a) गुरुमंजूषा (b) परमलघुमंजूषा

(c) बृहच्छब्देन्दुशेखर (d) मध्यसिद्धान्तकौमुदी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– भट्टोजिदीक्षित के कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

2– नागेश भट्ट की गुरु–शिष्य परम्परा का उल्लेख कीजिए?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– नागेश भट्ट के जन्म–समय एवं कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

2– वरदराज के जन्म–समय एवं कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

MAST-111

संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड–2

काव्यशास्त्र

इकाई–4 आचार्य भरत एवं आचार्य अभिनवगुप्त **47–58**

आचार्य भरत का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, भरत का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, संस्कृत साहित्यशास्त्र को भरत की देन। आचार्य अभिनवगुप्त का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, अभिनवगुप्त का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, संस्कृत साहित्यशास्त्र को आचार्य अभिनवगुप्त की देन।

इकाई–5 आचार्य भामह एवं आचार्य रुद्रट **59–70**

आचार्य भामह का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, भामह का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, संस्कृत काव्यशास्त्र को भामह की देन। रुद्रट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, संस्कृत–काव्यशास्त्र को आचार्य रुद्रट की देन।

इकाई–6 आचार्य आनन्दवर्धन एवं आचार्य मम्मट **71–83**

आनन्दवर्धन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, काव्यशास्त्र में उनका योगदान। आचार्य मम्मट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, उनका कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, काव्यशास्त्र को आचार्य मम्मट की देन।

इकाई–7 आचार्य कुन्तक एवं आचार्य क्षेमेन्द्र **84–98**

आचार्य कुन्तक का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, काव्यशास्त्र को कुन्तक की देन। आचार्य क्षेमेन्द्र का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय काव्यशास्त्र को क्षेमेन्द्र की देन।

mÙkj izns’k jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;
mÙkj izns'k iz;kxjkt

ijke'kZ lfefr

izks0 lhek flag	dqyifr] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
duZy fou; dqekj	dqylfpo] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izks0 lR;iky frokjh	funs’kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0]iz;kxjkt

fo'k"kK lfefr

izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt
izks0 gfjnÙk 'kekZ	vkpk;Z ,oa iwoZ v/;{k] laLd`r foHkkx b0fo0fo] iz;kxjkt
izks0 dk'kyUnz ik.Ms;	vkpk;Z ,oa v/;{k] lkfgR; laLd`r foHkkx dkfgfofo] okjk.klh
izks0 mes'k izlkn flag	vkpk;Z] laLd`r foHkkx dk'kh fgfofo] okjk.klh
Mk- fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr ¼lfoonk½

lEiknd@ifjekid

izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd ekufodh fo|k'kk[kk m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

ys[kd

Mk0 x.ks'k HkkxZo	lgk;d vkpk;Z] laLd`r foHkkx jktdh; egkfo|ky;] xqIrdk'kh] #nziz;kx] mÙkjk[k.M

leUo;d

Mk0 fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

2023 ¼eqfnzr½

© m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt&2023

ISBN- 978-81-19530-76-2

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेष राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2024

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

खण्ड–2

व्याकरणशास्त्र

प्रस्तावना : काव्य को आधार मानकर जो शास्त्र प्रवृत्त होता है, उसे काव्यशास्त्र कहा जाता है। जिस शास्त्र में सौन्दर्य का पर्यालोचन किया जाता है, उसे काव्यशास्त्र कहा जाता है। काव्य का नियम, अनुशासन निर्धारित करने वाले शास्त्र को काव्यशास्त्र कहा जाता है। संस्कृतभाषा में संस्कृतकाव्यशास्त्र का प्राचीन नाम काव्यालंकार है। इसे काव्यालंकार, काव्यशास्त्र, क्रिया–कल्प, साहित्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, आदि नामों से अभिहित किया गया है। खण्ड–2 काव्यशास्त्र के अन्तर्गत आचार्य भरतः आचार्य अभिनव गुप्त, आचार्य भामह, आचार्य रूद्रट, आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य मम्मत, आचार्य कुनाक एवं आचार्य क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व का अध्ययन किया जायेगा, जिसका विवरण निम्नलिखि है–

इकाई 4 आचार्य भरत एवं आचार्य अभिनवगुप्त

इकाई की रूपरेखा

4.1– इकाई परिचय

4.2– उद्देश्य

4.3– आचार्य भरत का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

4.4– भरत का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

4.5– संस्कृत साहित्य–शास्त्र को भरत की देन

4.6– आचार्य अभिनवगुप्त का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

4.7– अभिनवगुप्त का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

4.8– संस्कृत साहित्य–शास्त्र को आचार्य अभिनवगुप्त की देन

4.9– बोध प्रश्न

4.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत, तृतीय सेमेस्टर में प्रथम प्रश्न–पत्र के रूप में 'संस्कृतशास्त्र एवं शास्त्रकार' स्वीकृत है। इस प्रश्न–पत्र के खण्ड–2 काव्यशास्त्र की चतुर्थ इकाई में आचार्य भरत एवं आचार्य अभिनवमुक्त को रखा गया है, जिसके अन्तर्गत इन आचार्यों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन किया जायेगा है।

4.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- संस्कृत काव्यशास्त्र से परिचित हो सकेंगे।
- आचार्य भरत मुनि के विषय में जान सकेंगे।
- आचार्य भरत के कर्तृत्व का बोध हो सकेगा।
- अभिनवगुप्त के जन्म–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- अभिनवगुप्त की रचनाओं को जान सकेंगे।

4.3 आचार्य भरत का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

भारतीय परम्परा नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि को पौराणिक मुनि मानती है। उनकी स्थितिकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। भरत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य हैं और इनका ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' प्राचीनतम ग्रन्थ है। इन्होंने न केवल नाटक अपितु नृत्य, संगीत, अलंकार आदि का भी सुन्दर विवेचन किया है। भारतीय परम्परा में कई भरत नाम के व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें जड़–भरत, वृद्ध भरत, आर्यभरत, दशरथ पुत्र भरत हैं, परन्तु नाट्यशास्त्रकार भरत इनसे अलग व्यक्ति हैं। इन भरत का विवरण पुराणों तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण में उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि थे और इन्होंने स्वर्गलोक में 'लक्ष्मीस्वयंवर' नाटक का अभिनय कराया था। भरत के समय के विषय में डॉ.गिरजाशंकर त्रिपाठी तथा प्रो.मृदुला त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक में कतिपय विद्वानों का मन्तव्य प्रस्तुत किया है–

आचार्य विश्वेश्वर का मानना है कि भरत ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, और उनका समय 500 वि.पू. से लेकर प्रथम शताब्दी के बीच का है।

बौद्ध दार्शनिक कवि अश्वघोष के शारिपुत्रप्रकरण नाट्य ग्रन्थ में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र साथ का उल्लेख मिलता है। अश्वघोष प्रथम शताब्दी में हुए थे, अतः भरत का समय अश्वघोष से पूर्व का होना चाहिए।

डा. भोलाशंकर व्यास के अनुसार भरत कालिदास के पूर्व ही पौराणिक व्यक्तित्व धारण कर चुके थे। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित ऐन्द्रव्याकरण और यास्क के उदाहरण से स्पष्ट होता है, कि नाट्यशास्त्र की रचना उस समय हुई जब ऐन्द्रव्याकरण का महत्त्व पाणिनीय व्याकरण द्वारा कम नहीं किया गया था।

अभिनवगुप्त भरत के नाट्यशास्त्र को भरतसूत्र कहते हैं।

कुछ आचार्यों का मानना है, कि भरत का समय कालिदास से लगभग दो शताब्दी पूर्व अर्थात् ईसा की दूसरी शताब्दी का है।

डा. मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र को 100 ई.पू. के बीच का निर्धारित किया है।

इतिहासकार, समालोचक भरत व उनके नाट्यशास्त्र का समय ईस्वी पूर्व द्वितीय शतक के आरम्भ से द्वितीय शतक ईसवी तक स्वीकार करते हैं ।

4.4 भरत का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' की रचना की, जिसमें भरतमुनि ने नाटक के सांगोपांग विवेचन के साथ संगीत, काव्य, छन्द, भुवनकोषादि अन्य अनेक शास्त्रों का वर्णन किया है। एक वृतान्त के अनुसार देवताओं के अनुरोध पर ब्रह्मा जी ने चारों वर्णों के मनोरंजन हेतु नाट्यवेद नामक पंचम वेद की रचना की। जिसका ज्ञान उन्होंने भरतमुनि को दिया और भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रों के सहयोग से नाट्यशास्त्र का प्रयोग किया।

नाट्य शब्द 'नट्' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है– नर्तन, नृत्य, नृत्त। भरत के द्वारा नाट्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए अनुकरण, अनुकीर्तन और अनुदर्शन शब्द प्रयुक्त किए हैं। उनके अनुसार किसी के द्वारा किए गए कार्यों का अनुकरण 'नाट्य' कहा जाता है। नाट्य को स्पष्ट करते हुए भरत का मत है–

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।

अर्थात् संसार सुख–दुःख स्वभाव वाला है, संसार का या सुख–दुःखात्मक स्वभाव जब अंगादि अभिनय से अभिनीत होता है, तो नाट्य कहा जाता है। इस प्रकार नाट्य का शास्त्र 'नाट्यशास्त्र' कहा जाता है। अभिनय सम्बन्धी समस्त विषयों का निर्देशन, अनुशासित करने वाला शास्त्र नाट्यशास्त्र है।

नाट्यशास्त्र का प्रथम भारतीय संस्करण 1894 ईसवी में निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित हुआ, जिसमें अध्यायों की संख्या 37 है। 1929 ई में चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस से प्रकाशित हुआ, जिसमें 36 अध्याय हैं।

नाट्य शब्द से अभिप्राय नृत्य, गीत और वाद्य के समुदित रूप से है अर्थात् नृत्य, गीत और वाद्य के समुदाय रूप अर्थ का प्रकटन नाट्य शब्द से होता है। अमरकोश में भी नृत्य, गीत और वाद्य के समुदाय रूप को नाट्य कहा गया है। नाट्यशास्त्र संगीत, नृत्य और अलंकारशास्त्र का प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिसमें 36 अध्याय हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

पहला अध्याय– नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में आत्रेय आदि मुनियों ने भरत मुनि से पाँच प्रश्न किए–

नाट्यवेद की उत्पत्ति कैसे हुई ?

यह नाट्यवेद किन लोगों के लिए बना है? अर्थात् कौन इसका अधिकारी है?

नाट्यवेद के कौन–कौन अंग हैं?

नाट्यवेद की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

नाट्यवेद का प्रयोग कैसे हो सकता है ?

इस प्रकार प्रथम अध्याय में नाट्योत्पत्ति का वर्णन है, जिसमें नाटक के स्वरूप का विवेचन किया गया है। इस अध्याय में भरतमुनि ने बताया कि वेदों से ही नाटक की रचना की गयी है, जिसमें ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस का अंश लिया गया है।

दूसरा अध्याय– इस अध्याय में नाट्य–मण्डप का विवेचन किया गया है। जिसमें मण्डपविधान की विधि और मण्डप के अंगों की चर्चा की गयी है। जिसमें रंगपीठ, तीन प्रकार के प्रेक्षागृह का वर्णन है।

तीसरा अध्याय– इसे रंगपूजा के नाम से जाना जाता है। इसमें नाट्य मण्डप से सम्पन्न की जाने वाली आवश्यक धार्मिक कार्यों तथा विभिन्न देवताओं का पूजन वर्णित है।

चौथा अध्याय– इस अध्याय में ताण्डव का विवेचन किया गया है। तण्डु द्वारा भरत को ताण्डव नृत्य के करण, अंगहार तथा रेचकों का विवेचन। यह अध्याय नृत्यशिक्षा से सम्बन्धित है ।

पाँचवाँ अध्याय– इस अध्याय को पूर्वरंग कहा जाता है। इसमें नाटक के प्रारम्भ के लिए किए जाने वाले पूर्वरंगविधान, नान्दी पाठ, प्रस्तावना का वर्णन है।

छठाँ अध्याय– इसमें रस के सांगोपांग का विवेचन है। रस के 8 प्रकार, उनके देवता तथा रसों का रंग आदि का विवेचन किया है। रस निष्पत्ति का विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

सातवाँ अध्याय– इसे भावाध्याय नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत भाव, विभाव, स्थायी भाव, संचारी, व्यभिचारी भाव का विस्तृत वर्णन है।

आठवाँ अध्याय– अभिनय के चार प्रकार आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक का विवेचन किया गया है।

नवाँ अध्याय– इसमें उपांग अभिनय का वर्णन किया गया है। हस्त, कटि, पाद आदि शारीरिक अंगों का अभिनय विस्तार से बताया गया है।

दसवाँ अध्याय– इसमें वक्ष, कटि, उरु आदि शरीर के अन्य अंगों से किए जाने वाले अभिनय का वर्णन है।

ग्यारहवाँ अध्याय– इस अध्याय में चारीविधान का विवेचन है। मंच पर विशेष प्रकार से संगीत और ताल के साथ चलने की क्रिया चारी कहलाती है।

बारहवाँ अध्याय– इसमें मण्डल–विधान की चर्चा है। मण्डल का लक्षण, संख्या और प्रयोग का विशद वर्णन किया है।

तेरहवाँ अध्याय– इस अध्याय की गतिप्रचार संज्ञा है। इसमें पात्रों के अनुसार पात्रों की विविध गतियों का विवेचन हुआ है।

चौदहवाँ अध्याय– इसे कक्ष्यापरिधि तथा लोकधर्मि–निरूपणाध्याय नाम से जाना जाता है। इसमें रंगमंच की परिधि, परिधि उपयोग की विधि का विवेचन किया गया है।

पंद्रहवाँ अध्याय– इस अध्याय में वाचिक अभिनय का लक्षण सहित निरूपण किया है। छन्दों का विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

सोलहवाँ अध्याय– इस अध्याय में पात्रों के अनुसार छन्दों के प्रयोग का वर्णन किया गया है।

सत्रहवाँ अध्याय– इस अध्याय में काव्य के लक्षणों, अलंकारों, दोषों एवं काव्यगुणों का विशद विवेचन किया गया है।

अठारहवाँ अध्याय– इस अध्याय में भाषा के विधान के अन्तर्गत प्राकृत–भाषा की चर्चा करने के साथ उसके लक्षणों की व्याख्या की गयी है।

उन्नीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में पात्रों का पात्रों के साथ किया जाने वाला सम्बोधन, काकु–स्वर तथा उनके प्रकार, पाठ्य के गुण–दोषों का विवेचन प्रस्तुत है।

बीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में रूपक के 10 भेदों का उदाहरण सहित विवेचन किया गया है। रूपक के 10 भेद नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, वीथी, अंक, ईहामृग और प्रहसन हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय– इसमें नाट्य के कथावस्तु की रचना–विधान का वर्णन है। संधि, पंचावस्था, अर्थप्रकृति एवं अर्थोपक्षेपकों का विवेचन किया गया है।

बाइसवाँ अध्याय– इसमें वृत्ति–विधान का निरूपण किया गया है। चार वृत्ति भारती, सात्वती, कैशिकी तथा शेष वृत्ति की चर्चा की गयी है।

तेईसवाँ अध्याय– इस अध्याय के अन्तर्गत आहार्याभिनय अर्थात् वेशभूषा का निरूपण किया गया है।

चौबीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में सात्विक अभिनय की विवेचना है। अंग, वाणी द्वारा होने वाले अभिनय, स्त्रियों के स्वभावज एवं अयत्नज अलंकारों तथा नायक–नायिका के भेदों का निरूपण किया है।

पचीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में पुरुष तथा स्त्री पात्रों के अनुसार उनके चरित्र को व्याख्यायित किया गया है।

छबबीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में चित्राभिनय का विवेचन है।

सत्ताईसवाँ अध्याय– इस अध्याय में नाट्य–प्रदर्शन में प्रयुक्त होने वाली सिद्धियों का विवेचन किया गया है।

अठाईसवाँ अध्याय– इस अध्याय में आतोद्यविधान की चर्चा की गयी है। संगीत में प्रयुक्त चार प्रकार के वाद्य, सात स्वरों तथा उसके चार प्रकारों का विवेचन किया गया है।

उनतीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में तद वाद्यों और उनसे सम्बन्धित जातियों के रसाश्रित प्रयोग आदि का विवेचन किया गया है।

तीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में सुषिर वाद्य के विधान का वर्णन किया गया है।

इकतीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में ताल और लय के विधान, लक्षण का निरूपण किया है।

बत्तीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में ध्रुवा के विधान का वर्णन है।

तैंतीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों के विधान का वर्णन है।

चौंतीसवाँ अध्याय– इस अध्याय में पात्रों की प्रकृति, स्वभाव का वर्णन किया

गया है।

पैतीसवाँ अध्याय– इस अध्याय का नाम भूमिका–पात्र विकल्पाध्याय है। इसमें नाट्य मण्डली के सदस्यों का विभाजन करते समय सभी की व्यक्तिगत विशेषताओं का वर्णन किया है।

छत्तीसवाँ अध्याय– यह अन्तिम अध्याय है। इसमें मुनियों द्वारा नाटक के पृथ्वी पर अवतरित होने के विषय में पुनः प्रश्न किया गया है।

4.5 संस्कृत–साहित्य–शास्त्र को भरत की देन

उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ से ज्ञात होता है, कि भरतमुनि काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य हैं। काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों में रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि को माना जाता है। रसविषयक उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र के षष्ठ अध्याय में भरतमुनि ने रस की वैज्ञानिक विवेचना की है, जो परवर्ती आचार्यों के लिए आधारस्तम्भसदृश है। भरतप्रतिपादित रससूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" का अन्य आचार्यों द्वारा विशद विवेचन किया गया, जिसे 'रससूत्रसिद्धान्त' के नाम से जाना गया। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें काव्य के समस्त तत्त्वों का विवेचन किया है। इसी ग्रन्थ को आधार बनाकर ही अन्य आचार्यों ने अपने सिद्धान्त स्थापित किये।

4.6 अभिनवगुप्त का जन्म समय एवं जन्म स्थान

भारतीय शास्त्र–परम्परा में अभिनवगुप्त अद्वितीय प्रतिभाशाली, दार्शनिक तथा साहित्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने अपने जन्म–विवरण के बारे में पर्याप्त प्रमाण दिए हैं। परात्रिंशिका विवरण में अभिनवगुप्त ने अपने बारे में जानकारी दी है। अपने ग्रन्थों का रचनाकाल स्वयं ग्रन्थकार ने दिया है। अभिनवगुप्त ने भैरवस्तोत्र की रचना 68 लौकिक संवत् अर्थात् 993 ईसवी में की। उत्पलाचार्य की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ पर 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा–विवृत्ति– विमर्शिनी' वृत्ति लिखी। जिसका समय 90 लौकिक संवत् अर्थात् 1014 ई. था। अतः इससे सिद्ध होता है कि अभिनवगुप्त का समय दशम शताब्दी का अन्तिम भाग तथा ग्यारहवीं शताब्दी का आरम्भिक काल है।

अभिनवगुप्त कश्मीर निवासी शैव थे। किन्तु इनके पूर्वज सर्वथा कश्मीरी नहीं थे। अभिनवगुप्त के जन्म से 200 वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तरप्रदेश के कान्यकुब्ज नगर के निवासी थे। इनके पूर्वज महामाहेश्वर अत्रिगुप्त गंगा–यमुना के मध्य द्वाबा के क्षेत्र अन्तर्वेद के निवासी थे। उस समय कन्नौज में यशोवर्मन

का शासन था। अत्रिगुप्त से इनके अच्छे सम्बन्ध थे। अत्रिगुप्त भी सभी शास्त्रों में विद्वान् व पारङ्गत थे। कश्मीर के राजा ललितादित्य (725–781) अत्रिगुप्त को अपने साथ कश्मीर ले गए। वहीं इन्होनें वितस्ता के किनारे शीतांशु मौलिम् मन्दिर के समीप अपना भवन निर्मित किया। इसके लगभग दो शताब्दी पश्चात् अभिनवगुप्त का जन्म हुआ। राजा द्वारा इन लोगों को जीविकोपार्जन हेतु जागीरें प्रदान की गयी। दशम शताब्दी के प्रारम्भ में अभिनवगुप्त के पितामह वराहगुप्त हुए जो महापण्डित शैव थे। अभिनवगुप्त के पिता का नाम नरसिंहगुप्त या चुखलुक था तथा माता का नाम विमला या विमला कला था। तन्त्रालोक ग्रन्थ में वे स्वयं कहते हैं –

निःशेषशास्त्रसदनं किल् मध्यदेशः

तस्मिन्नजायत गुणाभ्यधिको द्विजन्मा

कोऽप्यत्रिगुप्त इति नामनिरुक्तगोत्रः।

शास्त्राबिधचर्वणकलोद्यदगस्त्यगोत्रः

तमथ ललितादित्यो राजा निजं पुरमानयत,

प्रणयरभसात् काश्मीराख्यं हिमालयमूर्धगम्।।

इनका पूरा नाम अभिनवगुप्तपाद था। गुप्तपाद सर्प को कहा जाता है। काव्यप्रकाश के टीकाकार वामन का मानना है कि यह नाम उनके गुरुओं ने रखा होगा। अपनी बाल्योचित शरारती चेष्टाओं से अपने साथ पढ़ने वाले बालकों को डराने के कारण यह नाम रख दिया होगा। इनका जीवन कुछ सुखद नहीं रहा। बाल्यकाल में ही माता का देहावसान तथा कुछ समय पश्चात् पिता के परलोक गमन से अभिनवगुप्त पर सम्पूर्ण परिवार का भार आ गया। ब्रह्मचर्य का निश्चय कर चुके अभिनवगुप्त साहित्य के सरस विषयों के लेखन में प्रवृत्त थे। एकाएक शिव भक्ति और दार्शिनक विषयों के अध्ययन में प्रवृत्त हो गये। कश्मीर में मगम नामक स्थान पर रहे तथा अपना अन्तिम समय जानकर भैरवगुफा में प्रविष्ट हो गए, पुनः कभी वापस नहीं लौटे।

अभिनवगुप्त विद्याव्यसनी थे। विविध विधाओं के प्रति उनकी जिज्ञासा थी। कश्मीर में उस समय विभिन्न विद्याओं के ज्ञाताओं से अभिनवगुप्त ने शास्त्रों का अध्ययन किया। उन्होंने अपनी गुरु परम्परा का स्वयं उल्लेख किया है। इनके गुरु व शिक्षक लक्ष्मणगुप्त थे, जिनसे इन्होंने प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का अध्ययन किया। इन्होंने भिन्न–भिन्न शास्त्रों का भिन्न–भिन्न गुरुओं से अध्ययन किया–

नरसिंहगुप्त– व्याकरण शास्त्र

ब्रह्मविद्या के गुरु– भूतिराज

ध्वनिसिद्धान्त के गुरु– इन्दुराजभट्ट

नाट्यशास्त्र के गुरु– भट्टतौत

द्वैतवादी शैवसम्प्रदाय के गुरु– भूतिराजतनय

द्वैताद्वैततन्त्र के गुरु– वामनाथ

प्रत्यभिज्ञा, क्रम तथा त्रिक दर्शन के गुरु– लक्ष्मणगुप्त

4.7 अभिनवगुप्त का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

अभिनवगुप्त प्रतिभावान, बालब्रह्मचारी, शिव उपासक, परम पण्डित थे। ज्ञानप्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक गुरुओं से शास्त्रों का अध्ययन किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अभिनवगुप्त दार्शनिक, काव्यशास्त्री एवं अनन्य भक्त थे। इनके साहित्यशास्त्र सम्बन्धी दो व्याख्या ग्रन्थ हैं –

- अभिनवभारती
- ध्वन्यालोक–लोचन

ये व्याख्या ग्रन्थ इतने महत्त्वपूर्ण हैं, कि मूल ग्रन्थों के सदृश्य समादरणीय हैं। अभिनवगुप्त के नाम से 41 कृतियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें 11 कृतियाँ ही प्रकाशित हैं–

- बोधपंचदशिका
- परात्रिंशिका–विवरण
- मालिनी विजय वार्तिक
- तन्त्रसार
- तन्त्रालोक
- तन्त्रवटधानिका
- ध्वन्यालोकलोचन
- अभिनवभारती
- भगवगीतार्थ संग्रह
- परमार्थ सार
- ईश्वरप्रत्यभिज्ञा–विवृत्ति–विमर्शणी

इन ग्रन्थों में 'ध्वन्यालोकलोचन' ध्वन्यालोक पर लिखी टीका है, जबकि

'अभिनवभारती' नाट्यशास्त्र पर लिखित टीका है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ शैवदर्शन से सम्बन्धित हैं।

4.7.1 ध्वन्यालोकलोचन– ध्वन्यालोकलोचन ध्वन्यालोक पर लिखी गई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सारगर्भित टीका है। आनन्दवर्धन के ध्वनिसिद्धान्त को इतना प्रसिद्ध और ग्राह्य लोचन टीका ने ही बनाया है। इसमें अभिनवगुप्त ने रसशास्त्र के प्राचीन व्याख्याकारों के सिद्धान्त, रसनिष्पत्ति एवं ध्वनि का पर्याप्त विवेचन किया है। विरोधी आचार्यों का तर्कपूर्ण खण्डन किया गया साथ ही पूर्ववर्ती टीकाकार की चन्द्रिका टीका के मतों की समालोचना भी की गयी है। ध्वन्यालोक के आलोचकों को यह टीका लोचन प्रदान करती है।

4.7.2 अभिनवभारती– अभिनवगुप्त द्वारा भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र पर लिखी गयी टीका अभिनवभारती है। इसमें नाट्यशास्त्र में वर्णित नृत्य, संगीत, कला आदि विषयों पर विस्तार से विवेचन किया गया है। परवर्ती आचार्यों ने इनके सिद्धान्तों का समर्थन व अनुसरण किया है। नाट्यशास्त्र पर यही उपलब्ध टीका है।

4.7.3 काव्यकौतुक विवरण– यह अभिनवगुप्त के गुरु भट्टतौत की रचना है। जिस पर अभिनवगुप्त ने 'विवरण' नाम की टीका लिखी। सम्प्रति यह ग्रन्थ और टीका दोनों अनुपलब्ध हैं।

उनकी रचनाओं में तन्त्र विषय ग्रन्थ प्रमुख हैं। उन्होंने तन्त्रलोक में आगमतन्त्र का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र ग्रन्थों में भैरवस्तव, क्रमस्तोत्र आदि प्रमुख हैं। शैवाद्वैतदर्शन से सम्बन्धित उनका ग्रन्थ ईश्वर–प्रत्यभिज्ञा–विमर्शिणी प्रमुख हैं। अभिनवगुप्त कहते हैं, कि ज्ञान की खोज हेतु उन्होंने तर्क, न्याय, वैशेषिक, बौद्ध तथा वैष्णवसिद्धान्तों के विद्वानों का आश्रय लिया। उनका मानना था कि उन्होंने शिव परमतत्त्व की प्राप्ति की है और शिव की प्रेरणा से ही वे साधारण मनुष्यों को आध्यात्मिक ज्ञान और मुक्ति का मार्ग दिखा सकते हैं।

4.8 संस्कृत–साहित्य शास्त्र को आचार्य अभिनवगुप्त की देन

भारतीय दर्शन एवं साहित्यशास्त्र में प्रख्यात वैदुष्य सम्पन्न अभिनवगुप्त ने अपनी रचनाधर्मिता से साहित्यशास्त्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। साहित्यशास्त्र में अभिनवगुप्त का रस–सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आदरणीय है। इनका रससिद्धान्त 'अभिव्यक्तिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। अभिनवगुप्त के अनुसार काव्य का अर्थ रस है। अलंकार, गुण, औचित्यादि रस के सहायक रूप में रहते हैं। इनका मानना है कि रस आत्मा है और अलंकारभूषण, रसव्यंजना में कभी–कभी अलंकारों की आवश्यकता भी नहीं होती। भरत ने नाट्यशास्त्र में रसनिष्पत्ति का

वर्णन करते हुए कहा है कि– "विभावानुभाव–व्यभिचारिसंयोगात् रस–निष्पत्तिः" अर्थात् विभाव, अनुभाव व संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस निष्पत्ति का क्या तात्पर्य है और विभावादि के द्वारा रस कैसे प्राप्त होता है। इस प्रक्रिया की व्याख्या अलग–अलग आचार्यों ने की एवं अपने–अपने रस–सूत्र सिद्धान्त स्थापित किए। अभिनवगुप्त ने अपने रस–सूत्र सिद्धान्त में रस–प्रक्रिया के अन्तर्गत तीन तत्त्वों का विवेचन किया है। इनके अनुसार रस–प्रक्रिया व्यंजना शक्ति पर आश्रित होती है। रस–प्रक्रिया का प्रमुख तत्त्व साधारणीकरण है, जिसके अन्तर्गत काव्य में वर्णित विभावादि पदार्थ अपने विशेष रूप का त्यागकर साधारण रूप में अभिव्यक्त होते हैं और यह साधारणीकरण स्वतः ही नैसर्गिक रूप से ललित कला के क्षेत्र में आविर्भूत होता है। इस प्रक्रिया में दूसरे तत्त्व का विवेचन करते हुए अभिनवगुप्त वासना को स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार रस का उन्मेष सहृदय में होता है। सहृदय से तात्पर्य; वे व्यक्ति जिनका वर्ण्य विषय के साथ तन्मयता स्थापित हो जाती है।

रस–प्रक्रिया में तीसरे तत्त्व संविद्–विश्रान्ति से तात्पर्य स्पष्ट करते हैं कि काव्यानन्द में अन्य बाह्य विषयों का सर्वथा अभाव होता है और आनन्द की पूर्ण अभिव्यंजना होती है। रस की प्रतीति न तो शब्द की अभिधा से, न ही लक्षणा से, अपितु व्यंजना शक्ति के द्वारा होती है। इस प्रकार इनके अनुसार रस व्यंग्य है। निष्कर्षतः साहित्यशास्त्र में अभिनवगुप्त का रस–सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद वैज्ञानिकता के कारण समादृत हुआ और परवर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकार किया गया। नाट्यशास्त्र पर लिखी गयी टीका अभिनवभारती द्वारा नाट्यशास्त्र के कठिन तत्त्वों का विवेचन हुआ है। लोचन के द्वारा आनन्दवर्धन के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुयी। काव्यशास्त्र में अभिनवगुप्त का रस–निष्पत्ति सिद्धान्त अविस्मरणीय है।

4.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

1– नाट्यशास्त्र की रचना की है–

(a) ब्रह्मा (b) शंकर

(c) भरत (d) अभिनवगुप्त

2– आत्रेय आदि मुनियों ने भरतमुनि से कितने प्रश्न किए–

(a) 2 (b) 4 (c) 6 (d) 5

3– भरतमुनि का रस–सूत्र किस अध्याय में वर्णित है–

(a) दूसरे (b) चौथे

(c) छठे (d) आठवें

4– नाट्यशास्त्र का प्रथम भारतीय संस्करण कब प्रकाशित हुआ–

(a) 1800 (b) 1850

(c) 1894 (d) 1929

5– नाट्य के कितने भेद हैं

(a) 8 (b) 9 (c) 10 (d) 12

6– ध्वन्यालोकलोचन किसकी रचना है–

(a) भरतमुनि (b) आनन्दवर्धन

(c) अभिनवगुप्त (d) इनमें से किसी की नहीं

7– निम्न में से अभिनवगुप्त की रचना नहीं है–

(a) अभिनवभारती (b) काव्यकौतुक

(c) तन्त्रालोक (d) रसगंगाधर

8– अभिनवगुप्त का रसनिष्पत्ति सिद्धान्त किस नाम से जाना जाता है–

(a) उत्पत्तिवाद (b) अभिव्यक्तिवाद

(c) भुक्तिवाद (d) इनमें से कोई नहीं

9– अभिनवभारती किस ग्रन्थ पर लिखी गई टीका है–

(a) ध्वन्यालोक (b) तन्त्रालोक

(c) परमार्थ सार (d) नाट्यशास्त्र

10– अभिनवगुप्त किस सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे –

(a) वैष्णव (b) शाक्त (c) शैव

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1– साहित्यशास्त्र को आचार्य अभिनवगुप्त की देन स्पष्ट कीजिये ?

2– नाट्यशास्त्र पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए?

3– काव्शास्त्र की आचार्य अभिनवगुप्त की देन पर प्रकाश डालिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– अभिनवगुप्त के जन्म–समय, जन्म–स्थान तथा कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए?

इकाई–5 आचार्य भामह एवं आचार्य रुद्रट

5.1– परिचय

5.2– उद्देश्य

5.3– आचार्य भामह का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

5.4– भामह का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

5.5– संस्कृत–काव्यशास्त्र को भामह की देन

5.6– रुद्रट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

5.7– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

5.8– संस्कृत काव्यशास्त्र को आचार्य रुद्रट की देन

5.9– बोध प्रश्न

5.1 परिचय

परास्नातक तृतीय सेमेस्टर में निर्धारित संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार' नामक प्रश्न–पत्र की पाँचवीं इकाई आचार्य भामह एवं आचार्य रुद्रट से सम्बन्धित है। इस इकाई में काव्यशास्त्रीय आचार्य भामह एवं रुद्रट के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व का अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- आचार्य भामह के जन्म–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- भामहकृत काव्यालङ्कार के विषय में जान सकेंगे।
- रुद्रट के जीवन–परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- रुद्रट के कर्तृत्व से अवगत हो सकेंगे।

5.3– आचार्य भामह का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान–

काव्यशास्त्र को स्वतन्त्र एवं पृथक् शास्त्र में स्वरूप प्रदान करने का श्रेय आचार्य भामह को प्राप्त है। संस्कृत के अनेक आचार्यों की भान्ति भामह ने भी

अपने बारे में कोई विवरण नहीं दिया है। अतः भामह की स्थिति–काल का पूर्णरूपेण निर्धारण नहीं हो सका है। विद्वानों ने अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर उनके स्थिति–काल को निर्धारित करने का प्रयास किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में इन विद्वानों के मतों का उल्लेख किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में जिन अलंकार शास्त्र के तत्त्वों का विवेचन गौण रुप से किया है, भामह ने उन तत्त्वों का विवेचन प्रधानता के साथ किया और अलंकार शास्त्र को स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में स्थापित किया। भरतयुग के पश्चात् भामह का ग्रन्थ सर्वमान्य है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में भामह का उल्लेख किया है। आनन्दवर्धन का समय नवम शताब्दी का है।

वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक ने काव्यालंकार की कारिकाओं का उल्लेख किया है। कुन्तक का समय 950–1025 ईस्वी माना जाता है।

उद्भट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार–सारसंग्रह' में अलंकार–लक्षण प्रकरण भामह के काव्यालंकार से लिया है। विद्वानों ने उद्भट का समय 778–813 निर्धारित किया है।

भामह और दण्डी के ग्रन्थों में अनेक समानता विद्यमान है। विद्वानों में भामह और दण्डी के पौर्वापर्य में मतभेद है, तथापि प्रबल प्रमाणों से दण्डी को भामह का परवर्ती स्वीकार किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से भामह का समय 500 ईसवी से 600 ईसवी निर्धारित किया जा सकता है। काव्यालंकार के अन्त में एक पद्य से ज्ञात होता है, कि भामह के पिता रक्रिलगोमिन् थे। विद्वानों ने भामह को कश्मीर प्रदेश का निवासी माना है। यहाँ आये रक्रिलगोमिन् शब्द से कुछ विद्वानों गोमिन् पद के कारण इन्हें बौद्ध धर्म का अनुयायी मानते हैं। उनके द्वारा मंगलाचरण में प्रयुक्त 'सार्वं सर्वज्ञ' में भी सर्वज्ञ शब्द का अर्थ बौद्ध मानकर उन्हें बौद्धमतावलम्बी मानते हैं, किन्तु काव्यालंकार में वैदिक धर्म के प्रति भामह की आस्था आये श्लोकों में शिव, विष्णु, राम, पार्वती आदि का उल्लेख उन्हें सनातनी मानता है।

5.4 भामह का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

भामह ने अलंकार–शास्त्र को स्वतन्त्रशास्त्र के रूप में स्थापित किया। उनका अलंकारशास्त्रपरक ग्रन्थ 'काव्यालंकार' का संस्कृतकाव्यशास्त्र के इतिहास में

महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यालंकार परिच्छेदों में विभक्त है, जिसमें 'छह परिच्छेद' हैं। इसमें लगभग 400 श्लोक हैं, जिनमें वस्तुतः 396 श्लोक ही मान्य हैं। काव्यालंकार का सर्वप्रथम प्रकाशन श्री के.पी.त्रिवेदी द्वारा किया गया। काव्यालंकार के छह परिच्छेदों का विषयानुसार विवरण प्रस्तुत है –

5.4.1 प्रथम परिच्छेद– इस परिच्छेद में काव्य के शरीर पर चर्चा की गयी है। मंगलाचरण में "सार्वं सर्वज्ञं" की स्तुति की गयी है। भामह ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य माना है– "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"। काव्य का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को माना है। भामह ने काव्य का विभाजन चार आधार पर निर्धारित किया –

छन्द के सद्भाव एवं अभाव के आधार पर काव्य के दो प्रकार

- **गद्य**
- **पद्य**

भाषा के आधार पर काव्य के तीन भेद–

- **संस्कृत**
- **प्राकृत**
- **अपभ्रंश**

विषय के आधार पर चार भेद –

- **ख्यातवृत्त**
- **कल्पित**
- **कलाश्रित**
- **शास्त्राश्रित**

स्वरूप के आधार पर काव्य के पाँच भेद –

- **महाकाव्य**
- **रूपक**
- **आख्यायिका**
- **कथा**
- **मुक्तक**

काव्यलक्षण में यदि शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य मान लेंगे तो समस्त वाणी काव्य कहलायेगी, क्योंकि सभी रचनाएं शब्द एवं अर्थ से युक्त होती हैं। इसलिए सम्भव है, कि शब्द एवं अर्थ के चमत्कार मात्र को ही काव्य की संज्ञा कहना भामह का आशय रहा होगा। प्रथम परिच्छेद के अन्त में काव्य–दोषों का विवेचन किया है।

5.4.2 द्वितीय परिच्छेद– इस परिच्छेद में अलंकारों का विवेचन है। अनुप्रास, यमक, रूपक, दीपक, उपमा, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभाव, समासोक्ति और अतिशयोक्ति अलंकारों का निरूपण किया गया है। गुणों के सन्दर्भ में तीन गुणों माधुर्य, ओज एवं प्रसाद का विवेचन है।

5.4.3 तृतीय परिच्छेद– इस परिच्छेद में तेईस अलंकारों का विवेचन किया गया है। जिनमें प्रेय, रसव, उर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, द्विविध उदात्त, त्रिविध श्लिष्ट, विशेषोक्ति, परिवृत्ति, सन्देह, भाविकत्व, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति का निरूपण किया गया है।

5.4.4 चतुर्थ परिच्छेद– इस परिच्छेद में काव्य के दोषों का निरूपण किया है। काव्य दोषों में 11 दोषों की गणना की है। इस परिच्छेद में 10 दोष अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, उपक्रम, शब्दहीन, यतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, विसन्धि, देश–काल–कला–लोक–न्याय–आगम–विरुद्ध, प्रतिज्ञा हेतु–दृष्टान्त–हीन।

5.4.5 पंचम परिच्छेद– ग्यारहवें दोष प्रतिज्ञा–हेतु–दृष्टान्त–हीन का विवेचन पंचम परिच्छेद में किया गया है। इसमें न्यायप्रक्रिया का विवेचन वर्णित है ।

5.4.6 षष्ठ परिच्छेद– इस परिच्छेद का नाम शब्दशुद्धि है। इसमें त्याज्य और ग्राह्य शब्दों का निर्देश दिया है। काव्य में ग्राह्य शब्दों के लिए प्रयुक्त अप्रतीत, दुर्बोध, अपेशल ग्राम्य शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वार्तिक–सिद्ध, प्रमाणित भाषा और अर्थयुक्त शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

काव्यालंकार के विभाजन में ग्रन्थ के अन्त में दो कारिकाओं का उल्लेख है–

षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्या त्वलङ्कृतिः

पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः।

षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तुपंचकम्

उक्तं षड् भिः परिच्छेदैर्भामहेन क्रमेण वः।।

अर्थात् काव्यशरीर का 60 कारिकाओं, अलंकार विवेचन का 160, दोष निरूपण का 50, न्याय प्रक्रिया का 70, शब्दशुद्धि प्रकरण का 60 कारिकाओं में उल्लेख है।

5.5 संस्कृत काव्यशास्त्र को भामह की देन

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के बाद ज्ञात काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'काव्यालंकार' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वाचिक–अभिनय के प्रसंग में अलंकारों का सन्निवेश किया है। भामह ने अलंकारों का स्वतन्त्र महत्त्व प्रदर्शित कर 'अलंकार–सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। लौकिक काव्यों में अलंकारों का चिन्तन सर्वप्रथम आचार्य भामह ने किया है। संस्कृतकाव्यशास्त्र में 'काव्यालंकार' काव्यशास्त्र विषयक प्रथम ग्रन्थ माना जा सकता है। आचार्य भामह ने शब्द और अर्थ के सहभाव से काव्य की निष्पत्ति मानी है। भरत द्वारा प्रतिपादित 10 गुणों की अपेक्षा 3 गुणों माधुर्य, ओज और प्रसाद का निर्देश दिया है। उन्होंने वक्रोक्ति अलंकार को समस्त अलंकारों का मूल माना है, जिसका विकास वक्रोक्तिजीवितम् में देखा जा सकता है। दोष निरूपण में 10 प्रकार के दोषों के अतिरिक्त नवीन दोषों की उद्भावनायें की हैं। इस प्रकार अलंकारशास्त्र की पृथक् सत्ता स्थापित की। इनके द्वारा निरूपित अलंकारों को परवर्ती आचार्यों द्वारा ग्रहण किया गया है। संस्कृत– काव्यशास्त्र का शायद ही कोई ऐसा ग्रन्थ हो जिसमें भामह का नाम न लिया हो। प्रायः लक्षणग्रन्थों में उनके वचन दिखायी देते हैं। परवर्ती आचार्यों ने; या तो उनके विचारों को अपना लिया या उनको उचित सम्मान प्रदान किया। भामह ने काव्य का केन्द्रीय तत्त्व शोभा, विभा या चारुता को माना है। अलंकार इस चारुता का स्रोत है। यह शोभा या चारुता दो प्रकार की होती है–

- **सहज**
- **कृत्रिम या प्रवार्द्धत**

काव्यसंज्ञा कहलाने के लिए दूसरे प्रकार की चारूता आवश्यक है। भामह के मत में यही दूसरे प्रकार की चारुता काव्योचित चारुता है। इसी के स्पर्श से उक्ति में कवित्व उत्पन्न होता है, और वही उक्ति काव्य कही जाती है। इनके अनुसार सौन्दर्य और सौन्दर्यसाधन अलंकार हैं। अलंकारवादी के रूप में भामह ने तीन मान्यताएं स्थापित की –

- अलंकार निष्पन्न सौन्दर्य ही काव्य में ग्राह्य है। काव्योचित सौन्दर्य अलंकार से सम्पन्न होना चाहिए।

- उनके अनुसार सौन्दर्य स्रोत मात्र अलंकार हैं, और अलंकार ही सौन्दर्य स्रोत हैं। यदि काव्यशास्त्र में सौन्दर्य स्रोत के नाम से अन्य तत्व हैं तो वे सभी अलंकार में अन्तर्निहित हो जाते हैं।
- काव्य में जो चारूता आती है, उसका स्रोत अलंकार है।

भामह का मानना है, कि जिस प्रकार वनिता का मुख सहज शोभा से युक्त होकर भी भूषणरहित होने पर शोभा नहीं पाता, उसी प्रकार काव्य की स्थिति है। उनके अनुसार सहज कमनीयता विद्यमान हो परन्तु काव्य संज्ञा से विभूषित होने के लिए जिस शोभा की आवश्यकता है, वह तो भूषण ही है। व्यवहार में भी अलंकार सहज शोभा के वर्धक होते हैं। अतः चारूता के स्रोत के रूप में अलंकार संज्ञा का मुख्यार्थ में प्रयोग भामह ने ही किया। रुय्यक ने भी अलंकारसर्वस्व में कहा है कि जिनके मत में अलंकार ही काव्य में प्रधान है, उनमें भामह तथा उद्भट प्रमुख हैं। इस प्रकार काव्य में अलंकार को चारुता का प्रमुख स्रोत मानने वाले भामह हैं। इस प्रकार भामह अलंकार मत के प्राचीन आचार्यों में प्रथम आचार्य हैं।

5.6 रुद्रट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

काव्यशास्त्र के इतिहास में वामन के पश्चात् आचार्य रुद्रट का नाम आता है। रुद्रट अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं। इनके समय का निर्धारण पी. वी.काणे ने अपनी पुस्तक में विभिन्न अन्तः साक्ष्यों के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास किया है, जिसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

- आचार्य रुद्रट ने भामह, दण्डी और उद्भट से अधिक अलंकारों का निरूपण किया है और यह विवेचन वैज्ञानिक भी है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है, कि रुद्रट इन आचार्यों के उत्तरवर्ती थे।
- राजशेखर प्रतिहारेन्दुराज, धनिक, लोचनकार और मम्मट ने रुद्रट का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष नामोल्लेख किया तथा उनके उदाहरणों का उल्लेख किया है।
- वल्लभदेव ने शिशुपालवध की टीका में उल्लेख किया है, कि उन्होंने रुद्रटप्रणीत अलंकार ग्रन्थ की भी टीका प्रस्तुत की है। हैल्स के मत में इस टीका में ऐसे अनेक पद्य हैं, जो वस्तुतः रुद्रट के काव्यालंकार से लिए गए हैं।
- रुद्रटप्रणीत काव्यालंकार की टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज ने भी रुद्रट की तीन कारिकायें एवं उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। वल्लभदेव तथा प्रतिहारेन्दुराज का

समय दशम शताब्दी का स्वीकार किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है, कि रुद्रट का समय नवम शताब्दी का मध्य भाग अर्थात् 850 ईसवी निर्धारित किया जाता है।

यद्यपि रुद्रट आनन्दवर्धन के समकालिक थे, परन्तु आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ में रुद्रट का उल्लेख नहीं किया, यह विचारणीय है। तथापि इसके सन्दर्भ में विद्वानों का मत है, कि सम्भवतः आनन्दवर्धन ने इस ग्रन्थ को किसी कारण से देखा न होगा या फिर उन्हें उपलब्ध ना हुआ हो। रुद्रट भामह तथा उद्भट से साम्य रखते हैं।

रुद्रट के जीवनवृत्त से सम्बन्धित प्राप्त जानकारी उपलब्ध नहीं होती। काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु ने अपनी टीका में उल्लेख किया है –

शतानन्दपराख्येन भट्टवामुकसूनुना।

साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमता हितम्।।

इससे ज्ञात होता है कि रुद्रट का दूसरा नाम शतानन्द था। किन्तु काव्यशास्त्र के इतिहास में वे रुद्रट नाम से प्रसिद्ध है। उनके पिता का नाम वामुक भट्ट था। ये सामवेदी थे। विद्वानों ने इनके नाम से इन्हें कश्मीर निवासी माना है।

5.7 रुद्रट का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

आचार्य रुद्रट अलंकार सम्प्रदाय के प्रतिनिधि आचार्य हैं। काव्यशास्त्र विषयक उनका ग्रन्थ 'काव्यालंकार' है। इस ग्रन्थ में 16 अध्याय हैं। जिनमें 734 पद्य हैं। काव्यालंकार पद्य शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। विषय प्रतिपादन का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय– प्रथम अध्याय में मंगलाचरण, गौरी व गणेश का स्तवन है। तत्पश्चात् काव्य–प्रयोजन, काव्य हेतु एवं कवि महिमा का विवेचन है।

अविरलविगलन्मदजल कपोलपालीनिलीनमधुपकुलः।

उद्भिन्ननवश्मश्रुश्रेणिरिवगणाधिपो जयति।।

अर्थात् उस गणेश की जय हो, जिसके गण्डस्थलों से निरन्तर मदजल बह रहा है, उन गण्डस्थलों पर बैठी हुई भ्रमरपंक्ति ऐसे प्रतीत हो रही है, मानो यह

नयी मूंछ निकल आई है।

सकलजगदेकशरणं प्रणम्य चरणाम्बुजद्वयं गौर्याः।

काव्यालंकारोऽयं ग्रन्थः क्रियते यथायुक्तिः।।

अर्थात् पार्वती के चरणकमलयुगल की जो सकल–संसार के एकमात्र शरण हैं, नमस्कार करके इस काव्यालंकार नामक ग्रन्थ की युक्तिपूर्वक रचना की जाती है। इन दोनों श्लोकों में गणेश, गौरी का मंगल स्तवन किया है।

काव्य–प्रयोजन में रुद्रट ने कहा है, कि काव्यरचना द्वारा कवि अपने यश का विस्तार करता है, नायक के चरित का विस्तार करता है, धन, सुख तथा अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करता है, रोगों से छुटकारा पाता है, अभीष्ट कामनाओं को तथा सहज ही चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की प्राप्ति करता है। इन प्रयोजनों में चतुर्वर्ग–प्राप्ति भामह से यश प्राप्ति, भामह व वामन से ग्रहण किया है, जबकि शेष नायक का गान, अनर्थ की शान्ति, विपत्ति का निवारण, रोग से मुक्ति, तथा देवता द्वारा अभीष्ट वर की प्राप्ति आचार्य रुद्रट की नूतन उद्भावना है। रुद्रट ने शक्ति, व्युत्पत्ति, तथा अभ्यास तीनों को काव्य हेतु माना है। यद्यपि ये काव्यहेतु पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित किए जा चुके थे, परन्तु शक्ति की जो परिभाषा आचार्य रुद्रट ने प्रस्तुत की वह न तो पूर्व में ही और नहीं बाद में कोई प्रस्तुत कर सका। इस प्रकार उनका काव्यहेतु अपेक्षाकृत प्रौढ़ एवं गम्भीर है।

द्वितीय अध्याय– इस अध्याय में काव्य का लक्षण प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् शब्द के प्रकार, वृत्ति, वाक्य, शब्दालंकारों में वक्रोक्ति और अनुप्रास का विवेचन है। काव्य का लक्षण करते हुए उन्होंने भामह का मत ही माना है–'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' अर्थात् शब्द और अर्थ के सहित भाव को काव्य कहते हैं। सहित भाव के दृष्टिगत काव्य का पर्याय साहित्य स्वीकार किया जाता है। क्योंकि 'हितेन सह सहितं सहितस्य भावः साहित्यम्'। इसके पश्चात् शब्द के पाँच भेदों का विवरण दिया है। वृत्ति के आधार पर तीन रीतियों का विवेचन है। इसी अध्याय में वाक्य पर चर्चा की गयी है।

तृतीय अध्याय– इस अध्याय में यमक अलंकार का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय– इसमें श्लेष अलंकार की चर्चा की गयी है, जिनमें वर्ण, पद, लिंग, भाषा, प्रकृति, प्रयत्न, विभक्ति, और वचन आठ भेद से श्लेष का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय– इस अध्याय में चित्र नामक शब्दालंकारों की चर्चा है, जिसमें चक्र बन्ध, मुरजबन्ध, सर्वतोभद्र, मात्राच्युतक प्रहेलिका आदि का निरूपण किया गया है।

षष्ठ अध्याय– इस अध्याय में दोष–प्रकरण का निरूपण किया गया है।

सप्तम अध्याय– इस अध्याय में अर्थ का लक्षण और वास्तवगत 23 अर्थालंकारों का विवेचन किया गया है।

अष्टम अध्याय–इस अध्याय में औपम्यगत 21अलंकारों की चर्चा की गयी है।

नवम अध्याय– इस अध्याय में अतिशय आधारित 12 अलंकारों का विवेचन किया गया है।

दशम अध्याय– इस अध्याय में अर्थ श्लेष के भेदों का सोदाहरण विवेचन किया है।

अलंकार निरूपण में रुद्रट ने सर्वप्रथम शब्दालंकारों में वक्रोक्ति, यमक, श्लेष तथा चित्र अलंकारों के भेदों का विवेचन किया, तथा नवीन उपभेदों का समावेश किया। रुद्रट ने 57 अर्थालंकारों का विवेचन किया है, जो वास्तव, औपम्यमूलक, अतिशय और श्लेष आधार पर चार वर्गों में विभक्त हैं। ग्रन्थ के प्रायः आधे भाग में अलंकारों का निरूपण होने से ही ग्रन्थ का नाम काव्यालंकार सार्थक होता है।

एकादश अध्याय– इस अध्याय में अर्थ–दोषों की चर्चा की गयी है, जिनकी संख्या 9 है।

द्वादश अध्याय– इस अध्याय में शृंगार रस का लक्षण, नायक–नायिका के भेद का निरूपण किया है।

त्रयोदश अध्याय– इस अध्याय में संभोग शृंगार का स्वरूप तथा देशकाल अनुसार नायिका की विशेषताओं का वर्णन है।

चतुर्दश अध्याय– इसमें विप्रलम्भ शृंगार का स्वरूप और उसके अनुराग तथा मान भेदों का वर्णन है।

पंचदश अध्याय– इस अध्याय में वीर, करुण, वीभत्स, भयानक, अद्‌भुत, हास्य, रौद्र, शान्त तथा प्रेयान् रस की चर्चा की गयी है।

षोडश अध्याय– इस अध्याय में महाकाव्य, कथा, आख्यायिका तथा लघुकाव्य आदि का विवरण है। भवानी, मुरारि और गणेश स्तुति के साथ अध्याय की समाप्ति होती है।

रस प्रकरण के सन्दर्भ में रुद्रट ने 10 रसों की गणना की। भरत प्रतिपादित 8 रस तथा दो अन्य शान्त व प्रेयान् रस। रुद्रट के काव्यालंकार से ज्ञात होता है, कि रस अब समादरणीय बन चुका था। रुद्रट ने अलंकारवादी आचार्यों के अनुसार रस को रसवत् अलंकार के अन्तर्गत न मानकर स्वतन्त्र रूप से स्वीकार किया है। रुद्रट ने काव्यालंकार पद्यात्मक शैली में लिखा है। प्रायः सभी लक्षण व उदाहरण पद्य में ही दिए गए हैं।

5.8 संस्कृत काव्यशास्त्र को आचार्य रुद्रट की देन

रुद्रट अपने से पूर्व किसी भी प्रख्यात काव्याचार्य से साक्षात् प्रभावित नहीं है। भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन का स्पष्ट प्रभाव इन पर परिलक्षित नहीं होता। रुद्रट द्वारा निरूपित एवं प्रतिपादित नए अलंकार एवं अलंकार समूह का विशेषकर नए अलंकारों का विकास है। इस प्रकार रुद्रट उस अप्रसिद्ध आचार्य का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भरत आदि पाँच आचार्यों से साक्षात् प्रभावित न होकर काव्य–सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं।

जब अलंकारवादी एवं रीतिवादी सिद्धान्त परम्परा समाप्त प्राय हो रही थी और काव्य का नया सिद्धान्त 'ध्वनि–सिद्धान्त' प्रस्तुत हो रहा था। इनके बीच की शृंखला का कार्य रुद्रट करते हैं। अर्थात् रुद्रट अलंकारवादी उद्भट और ध्वनिवादी आनन्दवर्धन इन दोनों के मध्यवर्ती शृंखला का कार्य करते हैं।

यदि भरतकृत नाट्यशास्त्र को काव्य विधान का ग्रन्थ न मानकर नाट्यविधान का ही ग्रन्थ माने तो रुद्रट का ग्रन्थ प्रथम संग्रह–ग्रन्थ है। और इस ग्रन्थ में अपने काल तक के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का सुव्यवस्थित संग्रह उपलब्ध है।

इन्होंने ही सर्वप्रथम अलंकारों का वर्गीकरण किया। वक्रोक्ति को शब्दालंकार के रूप में विवेचित किया। इनके द्वारा ही प्रेयान् रस की सर्वप्रथम चर्चा की गयी। अलंकारवादी युग के आचार्य होने पर भी भरत के पश्चात् रस का स्वतन्त्र निरूपण इनके ग्रन्थ में उपलब्ध है। वस्तुतः आचार्य रुद्रट अलंकारवादी एवं सफल संग्रहकर्ता हैं।

5.9–बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय–प्रश्न

1– भामह का अलंकारशास्त्र सम्बन्धित ग्रन्थ है –

(a) वक्रोक्तिजीवितम्

(b) काव्यालंकारसार–संग्रह

(c) अलंकारसर्वस्व

(d) काव्यालंकार

2– भामह का काव्य लक्षण है –

(a) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्

(b) ननु शब्दार्थौ काव्यम्

(c) शब्दार्थौ काव्यम्

(d) अलंकारसहितौ काव्यम्

3– भामह काव्यशास्त्र के किस सम्प्रदाय के आचार्य हैं –

(a) रससम्प्रदाय

(b) वक्रोक्तिसम्प्रदाय

(c) अलंकारसम्प्रदाय

(d) ध्वनिसम्प्रदाय

4– भामह ने काव्य में किसकी प्रधानता स्वीकार की है –

(a) रस

(b) गुण

(c) ध्वनि

(d) अलंकार

5– भामह ने अलंकारों की गणना की है –

(a) 20

(b) 57

(c) 23

(d) 62

6– रुद्रटकृत काव्यालंकार में अध्यायों की संख्या हैं –

(a) 6

(b) 8

(c) 12

(d) 16

7– रुद्रट काव्यशास्त्र के किस सम्प्रदाय के आचार्य हैं –

(a) रससम्प्रदाय (b) वक्रोक्तिसम्प्रदाय

(c) अलंकारसम्प्रदाय (d) ध्वनिसम्प्रदाय

लघु–उत्तरीय प्रश्न –

1– भामह कृत काव्यालंकार का संक्षेप में उल्लेख कीजिये ?

2– रुद्रट के कर्तृत्व का उल्लेख कीजिए ?

विस्तृत–उत्तरीय प्रश्न –

1– भामह के जन्म–स्थान व कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये?

2– रुद्रट के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई–6 आचार्य आनन्दवर्धन एवं आचार्य मम्मट

इकाई की रूपरेखा

6.1– इकाई परिचय

6.2– उद्देश्य

6.3– आनन्दवर्धन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

6.4– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

- 6.4.1 प्रथम उद्योत
- 6.4.2 द्वितीय उद्योत
- 6.4.3 तृतीय उद्योत
- 6.4.4 चतुर्थ उद्योत

6.5– काव्यशास्त्र में उनका योगदान

6.6– आचार्य मम्मट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

6.7– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

- 6.7.1 प्रथम उल्लास
- 6.7.2 द्वितीय उल्लास
- 6.7.3 तृतीय उल्लास
- 6.7.4 चतुर्थ उल्लास
- 6.7.5 पंचम उल्लास
- 6.7.6 षष्ठ उल्लास
- 6.7.7 सप्तम उल्लास
- 6.7.8 अष्टम उल्लास
- 6.7.9 नवम उल्लास
- 6.7.10 दशम उल्लास

6.8– काव्यशास्त्र को आचार्य मम्मट की देन

6.9– बोध प्रश्न

6.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के प्रश्नपत्र 'संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-111) के खण्ड–2 काव्यशास्त्र के अन्तर्गत छठीं इकाई जाचार्य आनन्दवर्धन एवं आचार्य मम्मर से सम्बन्धित है। प्रकृत इकाई में इन्हीं काव्यशास्त्रीय आचार्यों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य : प्रकृत इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- आचार्य आनन्दवर्धन के जीवन–परिचय को जान सकेंगे।
- ध्वनिसिद्धान्त का बोध कर सकेंगे।
- आनन्दवर्धन के कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।
- आचार्य मम्मट के व्यक्तित्व विषय में जान सकेंगे।
- मम्मटकृत काव्यप्रकाश के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- काव्यशास्त्र में आचार्य मम्मट के योगदान से परिचित हो सकेंगे।

6.3 आनन्दवर्धन का जन्मसमय एवं जन्मस्थान

- काव्यमीमांसा में काव्यकारण प्रकरण के दौरान राजशेखर ने आनन्दवर्धन का मत और परिकर श्लोकों का उल्लेख किया है। विद्वानों ने राजशेखर का समय 880 –920 ई. निर्धारित किया है।
- राजतरङ्गिणी में भी कल्हण ने उल्लेख किया है, कि आनन्दवर्धन कश्मीर के शासक अवन्तिवर्मा की राजसभा में सम्मानित थे। अवन्तिवर्मा का समय 855–884 ईसवी है।
- आनन्दवर्धन के ग्रन्थ देवीशतक पर कैयट ने 997 ईसवी में व्याख्या लिखी।

इस प्रकार आनन्दवर्धन का समय नवम शताब्दी का मध्य भाग निर्धारित होता है। आनन्दवर्धन कश्मीर के निवासी थे, तथा कश्मीर के प्रसिद्ध राजानक वंश से सम्बन्धित थे। आनन्दवर्धन विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। देवी तथा विष्णु के अनन्य उपासक थे। उनकी रचना देवीशतक से ज्ञात होता है कि इनके पिता नोण या नोण उपाध्याय थे।

6.4 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

आनन्दवर्धन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, किन्तु उनको प्रसिद्धि दिलाने वाला ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' है। ध्वन्यालोक अलंकारशास्त्र में उसी प्रकार समादृत है, जिस प्रकार व्याकरण में पाणिनि एवं अद्वैतवेदान्त में शंकराचार्य।

ध्वन्यालोक में 03 अंश हैं– कारिका, वृत्ति, उदाहरण। वृत्ति के अंश के रूप में परिकर, संक्षेप, तथा संग्रह श्लोक भी मिलते हैं।

विद्वानों में यह मतभेद का विषय है, कि ध्वन्यालोक के कारिकाकार व वृत्तिकार एक ही व्यक्ति है अथवा भिन्न–भिन्न। वस्तुतः इस भ्रान्ति का कारण अभिनवगुप्त की लोचनटीका में है। अभिनवगुप्त ने कारिका को मूलकारिका तथा उसके रचनाकार को कारिकाकार और आनन्दवर्धन को वृत्तिकार कहा। किन्तु विद्वानों ने प्रमाणों सहित इसका खण्डन किया। अधिकांश विद्वान् कारिकाकार एवं वृत्तिकार दोनों का कर्ता आनन्दवर्धन को ही मानते हैं। सम्भवतः पहले कारिका लिखी गयी उसके कुछ समय पश्चात् वृत्ति लिखी गयी होगी। अतः पूर्व–अपर क्रम देखा जा सकता है। प्रथम उद्योत में कारिकाओं में जिन विषयों का उल्लेख किया है, उसका द्वितीय उद्योत में वृत्ति द्वारा विवेचन किया गया है।

- जिन लोगों का मानना है कि कारिकाओं की रचना सहृदय ने की, यह भी युक्तियुक्त नहीं। क्योंकि सहृदय किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। आनन्दवर्धन ने स्वयं सहृदयमनः प्रीतये की वृत्ति में लिखा है–"सहृदयानां मनसि आनन्दो लभतां प्रतिष्ठाम्"। इसकी व्याख्या में अभिनवगुप्त ने आनन्द शब्द का अर्थ किया है आनन्दवर्धन तथा आनन्द। परन्तु सहृदय के दो अर्थ नहीं किये।

- प्रतिहारेन्दुराज ने भी उद्भट के काव्यालंकार सार–संग्रह पर लघुवृत्ति में सहृदय परिभाषिक शब्द माना है।

- राजशेखर ने भी कारिका एवं वृत्ति दोनों का रचयिता आनन्दवर्धन को माना है।

- कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र आदि आचार्यों ने भी कारिकाकार एवं वृत्तिकार दोनों का रचयिता आनन्दवर्धन को माना है।

अर्वाचीन विद्वानों में डॉ शंकरन, डॉ के.सी पाण्डे, बलदेव उपाध्याय तथा डॉ रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि ने भी कारिकाकार व वृत्तिकार में भेद न मानकर दोनों का कर्ता आनन्दवर्धन को स्वीकार किया है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ध्वन्यालोक के कारिका एवं वृत्ति दोनों के रचनाकार आनन्दवर्धन हैं।

ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना की है और काव्य

में ध्वनि तत्व की महत्ता को अमरता प्रदान की है। ध्वन्यालोक 4 उद्योतों में विभक्त है। संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना की है और काव्य में ध्वनि तत्व की महत्ता को अमरता प्रदान की है। ध्वन्यालोक 4 उद्योतों में विभक्त है। संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

6.4.1 प्रथम उद्योत– प्रथम उद्योत में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि की स्थापना के लिए ध्वनि को काव्य की आत्मा बताया है। ध्वनि के स्वरूप निरूपण की प्रतिज्ञा करके ध्वनि विरोधियों के तीन भेद प्रदर्शित किए–

- अभाववादी
- भक्तिवादी
- अलक्षणीयतावादी

आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं कि–

काव्यस्यात्माध्वनिरितिर्बुधैर्यः समाम्नात–पूर्वः

तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।

केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्व मूचुस्तदीयं

तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्।।

अर्थात् विद्वानों ने काव्य की आत्मा ध्वनि को कहा है जिसका कुछ आचार्य अभाव मानते हैं, कुछ उस ध्वनितत्त्व को लक्षणागम्य (भाक्त), तथा कुछ उसको वाणी का विषय नहीं मानकर अलक्षणीय कहते हैं। किन्तु सहृदयों के मन की प्रीति के लिए मैं उस ध्वनि का स्वरूप बताता हूँ।

ध्वनिविरोधियों में अभाववादी, भक्तिवादी और अलक्षणीयतावादी हैं। इनका खण्डन करते हुए ध्वनिकार ने स्पष्ट किया कि ध्वनि का अन्तर्भाव न तो अभिधा में हो सकता है, न ही अलंकारों व लक्षणा में हो सकता है। क्योंकि ध्वनि का लक्षण कथन होने से उसे अलक्षणीय भी नहीं कह सकते हैं। इसी उद्योत में ध्वनि के लक्षण का प्रतिपादन करके समासोक्ति, आक्षेप, पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का ध्वनि से पार्थक्य प्रदर्शित किया है। ध्वनि की व्युत्पत्ति करते हुए स्पष्ट किया कि ध्वनि की संज्ञा केवल काव्य की नहीं है अपितु शब्द, अर्थ, व्यङ्ग्यार्थ, व्यंजना–व्यापार और काव्य इन पाँचों को ध्वनि नाम से कहा गया है।

- **ध्वनति इति ध्वनिः**– जो ध्वनित करे वह व्यंजक शब्द व व्यंजक अर्थ

ध्वनि है।

- **ध्वन्यते इति ध्वनिः**– जो ध्वनित किया जावे वह ध्वनि ळें इसमें वस्तु, अलंकार और रस व्यंग्य के तीनों रूप आते हैं।

- **ध्वननं ध्वनिः**– जिसके द्वारा ध्वनित किया जावे अर्थात् शब्द अर्थ का व्यापार व्यंजना ध्वनि है।

- **ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः**– जिसमें वस्तु, अलंकार, रसादि ध्वनित हों उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।

अर्थात् प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले वाचक शब्द और वाच्य अर्थ ध्वनि है। दूसरी व्युत्पत्ति में व्यंग्य अर्थ ध्वनि है, और तीसरी व्युत्पत्ति के अनुसार 'व्यंजना व्यापार' ध्वनि है।

6.4.2 द्वितीय उद्योत– इस उद्योत में ध्वनिकार ने व्यंग्य के भेद से ध्वनि के भेदों और लक्षणों का विवेचन किया है। इसी में गुणों का विवेचन किया है। ध्वनि के लक्षणमूला (अविवक्षितवाच्य) और अभिधामूला (विवक्षितान्यपरवाच्य) भेदों पर विचार किया है।

6.4.3 तृतीय उद्योत– इसमें पदों, वाक्यों, पदांशों रचना आदि द्वारा ध्वनि को प्रकशित किया गया है। इस उद्योत में व्यंजक के भेद से ध्वनि के भेदों का विवेचन किया गया है। गुणीभूतव्यंग्य व चित्रकाव्य के स्वरूप का भी निरूपण किया है। इसके पश्चात् रीति और वृत्तियों का संक्षेप में अपना मत प्रदर्शित किया है।

6.4.4 चतुर्थ उद्योत– इस उद्योत में कवि ने प्रतिभा के आनन्त्य का विस्तार से विवेचन किया है। साधारण वस्तु भी कवि की कल्पना के चमत्कार से अपूर्व रूप धारण कर लेती है।

ध्वन्यालोक में कारिकाओं के अतिरिक्त व्याख्यायुक्त पद्य हैं, जो वृत्ति के भाग हैं। ध्वनिकार ने इन्हें परिकर, संग्रह और संक्षेप श्लोक कहा है।

(i) **अर्जुनचरित महाकाव्य**– इस महाकाव्य का उल्लेख स्वयं आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में किया है। ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में प्रबन्ध की रसव्यंजकता में कारण बताते हुए अर्जुनचरित महाकाव्य का उल्लेख करते हैं।

(ii) **विषमबाणलीला**– इसका उल्लेख भी ध्वनिकार ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में किया है। इसके उदाहरणों से इसकी रचना प्राकृत भाषा में लिखी हुयी प्रतीत

होती है।

(iii) **देवीशतक**– देवी की स्तुति में लिखा गया काव्य है। इसका उल्लेख हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में किया है।

(iv) **तत्त्वालोक**– यह दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसका उल्लेख अभिनवगुप्त ने लोचन टीका में किया है।

(v) **धर्मोत्तमाविवृति**– इसका ज्ञान भी अभिनवगुप्त की लोचन टीका से प्राप्त होता है।

6.5 काव्यशास्त्र में उनका योगदान

काव्यशास्त्र में आचार्य आनन्दवर्धन का योगदान अविस्मरणीय है। वे काव्यतत्त्ववित् सहृदय, शास्त्रवेत्ता, समालोचक, दार्शनिक तथा ध्वनिसिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य हैं। उनका ध्वनि–सिद्धान्त काव्यशास्त्र में सदैव समादृत रहा है। परवर्ती आचार्यों ने भी उनके ध्वनि–सिद्धान्त का सम्मान एवं समर्थन किया है। वस्तुतः ध्वनि सिद्धान्त का मूल वैयाकरणों का स्फोटवाद है। वे स्फोट के अभिव्यञ्जक शब्द तथा अभिव्यक्त स्फोट को ध्वनि नाम से पुकारते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुये काव्यतत्त्वार्थदर्शियों ने व्यङ्ग्य–व्यञ्जक भाव में तथा प्रधानभूत व्यङ्ग्य को ध्वनि शब्द से व्यवहृत किया है। यद्यपि ध्वनि–सिद्धान्त पूर्व में ही परम्परा से प्राप्त था, जिसका विरोध भी रहा होगा। काव्याचार्यों भामह ने इसे अमुख्य माना तो वामन ने लक्षणा के अन्तर्गत माना, उद्भट ने इसे अलंकार में समाहित किया। किन्तु ध्वनिविषयक जिज्ञासा में ध्वनि के स्वरूप का निरूपण आनन्दवर्धन ने किया। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में स्पष्ट किया कि काव्य में दो प्रकार के अर्थ होते हैं– वाच्य और प्रतीयमान। वाच्यार्थ में अलंकारादि का समावेश होता है, जबकि प्रतीयमान में ध्वनि के भेद आते हैं। वाच्य अर्थ का बोध शब्दशास्त्र से होता है किन्तु प्रतीयमान सहृदयसंवेद्यमात्र है। यही प्रतीयमान अर्थ काव्य में अधिक चमत्कार का हेतु होता है। यह प्रतीयमान अर्थ तीन प्रकार का होता है–

- वस्तु
- अलंकार
- रस

यह प्रतीयमान अर्थ व्यंजनावृत्ति द्वारा प्राप्त होता है। ध्वनि का लक्षण करते

हुए कहते हैं– जहाँ व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारी होता है, वहीं व्यङ्ग्य ध्वनि कहलाता है। अर्थात् जहाँ अर्थ अथवा शब्द अपने अर्थ को त्यागकर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करता है, उसे विद्वानों ने ध्वनितत्त्व की संज्ञा दी है।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

यह ध्वनि तीन प्रकार की होती है–

- वस्तुध्वनि
- अलंकारध्वनि
- रसध्वनि

इन तीनों ध्वनियों में रस–ध्वनि प्रमुख है। इसमें रसों के साथ–साथ भाव, भास आदि की गणना होती है। आचार्य आनन्दवर्धन का यह महान् योगदान है कि उन्होंने ध्वनि नामक तत्त्व को अन्य तत्त्वों से पृथक् कर ध्वनि की पृथक् स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। आनन्दवर्धन के पश्चात् परवर्ती आचार्यों अभिनवगुप्त, मम्मट, हेमचन्द्र, जयदेव, विश्वनाथ, विद्यानाथ, जगन्नाथ आदि ध्वनिसिद्धान्त के समर्थक हैं। परन्तु ऐसे भी आचार्य हुए जिन्होंने ध्वनितत्त्व को तो स्वीकार किया किन्तु व्यङ्ग्यार्थ के प्रतिपादक व्यंजनावृत्ति को नहीं माना। आज काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों में ध्वनिसम्प्रदाय (ध्वनि–सिद्धान्त) का गौरवपूर्ण स्थान है।

6.6 आचार्य मम्मट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

अलंकारसाहित्य के आचार्यों में आचार्य मम्मट सुप्रसिद्ध हैं। उनके नाम से यह प्रतीत हो जाता है कि वे कश्मीर निवासी थे। इनके जीवन परिचय के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं मिलते हैं। आचार्य मम्मट ने अलंकार साहित्य में उनसे पूर्व प्रदत्त सिद्धान्तों का निदर्शन कराते हुए काव्य के स्वरूप तथा उसके अङ्गों का विवेचन अपने ग्रन्थ में किया है। कश्मीरी पण्डितों की परम्परा में मम्मट नैषधीयचरितम् श्रीहर्ष के मामा माने जाते हैं, किन्तु विद्वानों ने इसे उचित नहीं माना है। काव्यप्रकाश के टीकाकार भीमसेन ने सुधासागर टीका में मम्मट का परिचय देते हुए आचार्य मम्मट को कश्मीरदेशस्थ जैयट का पुत्र माना है तथा

कैयट और उव्वट को मम्मट का अनुज बताया है। इस कथनानुसार मम्मट के पिता जैयट थे तथा कैयट जिन्होंने महाभाष्य पर टीका लिखी तथा उव्वट जिन्होंने यजुर्वेद पर भाष्य लिखा, ये दोनों मम्मट के अनुज थे। क्योंकि उव्वट ने वाजसनेय संहिता भाष्य में अपना परिचय देते हुए स्वयं को वज्रट का पुत्र बताया है। किन्तु कैयट को मम्मट का अनुज माना जा सकता है, क्योंकि कैयट ने स्वयं "कैयटो जैयटात्मजः" के अनुसार अपने को जैयट का पुत्र कहा है। मम्मट कश्मीर निवासी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आचार्य मम्मट का जन्म उस समय में हुआ जब कश्मीर में साहित्यिक चेतना का उत्थान हो रहा था तथापि उनके समय का निश्चित रूप में निर्धारण नहीं है। अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर उनके समय का विद्वानों द्वारा निर्धारण किया गया।

- मम्मट ने अपने ग्रन्थ में अभिनवगुप्त तथा नवसहसाङ्कचरित को उद्धृत किया है। अभिनवगुप्त 1015 ईस्वी तक विद्यमान थे तथा नवसहसांकचरित का रचनाकाल 1005 ई. है।
- अपने ग्रन्थ में उदात्त अलंकार के उदाहरणार्थ मम्मट ने भोज का उल्लेख किया है। इतिहासकारों के अनुसार भोज का समय 1054 ई. से आगे नहीं जा सकता है।
- काव्यप्रकाश की द्वितीय टीका लिखने वाले माणिक्यचन्द्र सूरि हैं, जिन्होंने 1160 ई. में संकेत नाम से टीका लिखी।

उपर्युक्त प्रमाणों, तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि मम्मट का समय 1050 ईसवी से 1150 ईसवी के मध्य है अर्थात् मम्मट का समय 11वीं शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है।

6.7 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

वाग्देवतावतार की उपाधि से विभूषित आचार्य मम्मट का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' है, जो काव्य का सांगोपांग विवेचन करता है। यह अलंकारशास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है। काव्यप्रकाश साहित्यशास्त्र का आकार ग्रन्थ है। मम्मट के उत्तरवर्ती आचार्यों ने मम्मट को बड़े आदर और सम्मान के साथ स्मरण किया है। भीमसेन ने मम्मट को 'वाग्देवतावतार' की संज्ञा दी है। काव्यप्रकाश उल्लासों में विभक्त है, जिसमें 10 उल्लास हैं। काव्यप्रकश के 03 अंश हैं –

- कारिका

- वृत्ति
- उदाहरण

कतिपय विद्वान् कारिकाकार व वृत्तिकार दोनों को अलग–अलग मानते हैं। किन्तु काव्यप्रकाश के टीकाकारों, व्याख्याकारों व उत्तरवर्ती आचार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि कारिका व वृत्ति दोनों के रचयिता आचार्य मम्मट ही हैं। उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सामग्री को भी मम्मट ने अन्यत्र से कहीं मूलरूप में तथा कहीं आंशिक परिवर्तन करके काव्यप्रकाश में समाविष्ट किया है।

काव्यप्रकाश काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है, जिसमें काव्य रचना का अनुशासन निर्दिष्ट है। 10उल्लासों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

6.7.1 प्रथम उल्लास– प्रथम उल्लास में मङ्गलाचरण, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य लक्षण तथा काव्यभेद का निरूपण किया गया है। कविभारती का स्तवन करके काव्य के छह प्रयोजन– यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान, अमङ्गल का नाश, सद्य आनन्द, कान्तासम्मितउपदेश बतलाए हैं। शक्ति, निपुणता तथा काव्यानुशीलन इन तीनों के समुदित रूप को काव्य का हेतु निर्दिष्ट किया है। काव्य के लक्षण में मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य लक्षणों को समन्वित कर काव्य लक्षण प्रस्तुत किया है–

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"

अर्थात् दोष रहित, गुणसहित और अलंकार न भी हों ऐसे शब्दार्थ युगल को काव्य कहा है। इस प्रकार उन्होंने अपने काव्य लक्षण में दोषों की निवृत्ति, गुणों की प्रवृत्ति तथा अलंकारों में उदासीनता प्रदर्शित की है। काव्य का विभाजन ध्वनि/व्यङ्ग्य के आधार पर किया है। काव्य को तीन भेदों में विभक्त किया है–

उत्तमकाव्य– जिसकाव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ अधिक चमत्कारजनक होता है–

"इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्वुधैः कथितः"

मध्यमकाव्य– व्यङ्ग्यार्थ के वाच्यार्थ से बढ़कर न होने पर उसे मध्यमकाव्य की संज्ञा दी है, जिसे विद्वान् गुणीभूतव्यङ्ग्य कहते हैं–

"अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं तु मध्यमम्"

अवरकाव्य– व्यङ्ग्य रहित काव्य को अवरकाव्य कहा है। वह शब्दचित्र एवं वाच्यचित्र भेद से 02 प्रकार का होता है–

"शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्"

6.7.2 द्वितीय उल्लास– द्वितीय उल्लास में शब्दों व अर्थों के प्रकार बताएं हैं। जिसमें शब्द के तीन भेद वाचक, लाक्षणिक तथा व्यंजक और अर्थों के तीन भेद वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य का निरूपण किया है। अर्थ का चतुर्थ भेद तात्पर्यार्थ के साथ ही अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद, मुकुलभट्ट के लक्षणा का खण्डन, गङ्गायां घोषः उदाहरण का विश्लेषण, और अभिधामूला व्यंजना का निरूपण किया है।

6.7.3 तृतीय उल्लास– इसमें अर्थव्यंजकता का विवेचन किया गया है कि वाच्य आदि अर्थ किस प्रकार व्यंजक होते हैं। इसमें अर्थ के भेद, आर्थी व्यंजना का निरूपण किया गया है।

6.7.4 चतुर्थ उल्लास– चतुर्थ उल्लास को ध्वनि निर्णय नाम से जाना जाता है। इसमें ध्वनि (उत्तम काव्य के अविवक्षितवाच्य तथा विवक्षितान्यपरवाच्य दो भेदों और उसके प्रभेदों) का निरूपण किया है। साथ ही रस सिद्धान्त का विशद विवेचन किया है। इसी उल्लास में भरतमुनि के रससूत्र के व्याख्याकारों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण है, जिसमें भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद, श्रीशङ्कुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक का भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद का परिचय है।

6.7.5 पंचम उल्लास– इस उल्लास में गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य की व्याख्या की गयी है। व्यंजना की सिद्धि तार्किक युक्तियाँ तथा पाण्डित्य के साथ प्रदर्शित की गयी है।

6.7.6 षष्ठ उल्लास– इसमें चित्रकाव्य का विवेचन किया गया है। चित्रकाव्य के दोनों भेद शब्दचित्र और अर्थचित्र का निरूपण किया है।

6.7.7 सप्तम उल्लास– इस उल्लास में काव्यदोषों का वर्णन किया गया है। दोषनिरूपण में पदगत, वाक्यगत, पदांशगत, अर्थदोष, रसदोष का विवेचन किया गया है।

6.7.8 अष्टम उल्लास– इसमें गुणों का विवेचन किया गया है। गुण निरूपण में मम्मट ने तीन गुणों का निर्णय किया है। जिसमें माधुर्य, ओज तथा प्रसाद हैं। भरतमुनि निर्दिष्ट 10 तथा वामन प्रतिपादित 20 गुणों का समावेश तीन गुणों में ही हो जाता है।

6.7.9 नवम उल्लास– इस उल्लास में अलंकार–लक्षण, तथा शब्दालंकारों का विवेचन किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, अर्थश्लेष, और पुनरुक्तवादाभास का विवेचन है।

6.7.10 दशम उल्लास– इस उल्लास में अर्थालंकारों का निरूपण किया गया है। इसमें 61 अर्थालंकारों का विवेचन है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाटक के अतिरिक्त साहित्यशास्त्र के प्रायः समस्त विषयों का विवेचन काव्यप्रकाश में प्राप्त होता है।

6.8 काव्यशास्त्र को आचार्य मम्मट की देन

काव्यशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट की अमरकृति है। काव्यशास्त्र को आचार्य मम्मट का महत्त्वपूर्ण योगदान है– काव्य का व्यापक लक्षण प्रस्तुत करना। वस्तुतः साहित्यशास्त्र के सम्प्रदायों में से मम्मट ने किसी एक का अनुसरण नहीं किया। उन्हें ध्वनिवाद का समर्थक तथा प्रचारक माना जाता है। उनके ग्रन्थ में ध्वनितत्त्व का आधार ही ग्रहण किया गया है। आनन्दवर्धन ने जिस ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना की, अभिनवगुप्त ने जिस ध्वनि का रस आदि के साथ सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया तथा उनके शिष्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यसम्प्रदाय में जिसका रूप प्रस्तुत किया, उस ध्वनितत्त्व को आचार्य मम्मट ने उत्तमता का आधार माना है। उन्होंने काव्य की वास्तविक आत्मा की अनुभूति का प्रयास किया। मम्मट से पूर्वाचार्यों ने काव्य के बाह्य पक्ष का ही प्रायः विवेचन किया है। भामह ने काव्य के अलंकार, रचना–सौन्दर्य, दण्डी ने इसका कुछ अधिक विस्तार, वामन ने अलंकार का सौन्दर्य तथा रुद्रट ने काव्य का कुछ अधिक विवेचन किया। परन्तु ये सभी काव्य की कलात्मकता का ही वर्णन कर सके। रससम्प्रदाय के आचार्यों ने भी विशेष प्रकार के आनन्द को ही काव्य का सार कहा। उन्होंने कल्पना तथा विचार के प्रति उदासीनता प्रकट की। इन कमियों को आनन्दवर्धन ने पहचान कर काव्य का सामञ्जस्यपूर्ण विश्लेषण किया परन्तु उनका उद्देश्य भी ध्वनिनिरूपण ही रहा। वक्रोक्तिसम्प्रदाय ने उक्तिवैचित्र्य को, क्षेमेन्द्र ने समस्त काव्याङ्गों के औचित्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

आचार्य मम्मट ने काव्य के बाह्य व अन्तः दोनों पक्षों का सुन्दर विवेचन किया। उनके काव्यलक्षण में शब्द–अर्थ कविता का शरीर है, तो 'सगुणौ' द्वारा उस काव्य की आत्मा की अभिव्यक्ति होती है, 'अदोषौ' के द्वारा अन्तः एवं बाह्य

की निर्दोषता परिलक्षित होती है और यथासम्भव उचित अलंकारों द्वारा उसका लावण्य प्रतीत होता है। इस प्रकार आचार्य मम्मट ने काव्य का ऐसा सुन्दर एवं समन्वित लक्षण प्रस्तुत किया जो सभी प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्याचार्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

काव्यभेद के विवेचन में ध्वनिकाव्य को उत्तम, गुणीभूतव्यङ्ग्य को मध्यम तथा अवरकाव्य को चित्रकाव्य की उद्भावना मम्मट की ही मूल रचना है। अन्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गुणों का मम्मट ने त्रिविध गुणों में समावेश किया है।

6.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– ध्वन्यालोक के रचनाकार हैं –

(a) मम्मट (b) क्षेमेन्द्र (c) आनन्दवर्धन (d) अभिनवगुप्त

2– काव्यप्रकाश में कितने उल्लास हैं –

(a) 5 (b) 6 (c) 8 (d) 10

3– काव्यप्रकाशानुसार काव्य के भेद हैं –

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

4– ध्वन्यालोक में काव्य की आत्मा किसे बताया गया है –

(a) रस (b) अलंकार (c) रीति (d) ध्वनि

5– आनन्दवर्धन ने ध्वनितत्त्व न मानने वालों को निम्न में से किस नाम से अभिहित किया है –

(a) औचित्यवादी (b) भाक्तवादी (c) रूढ़िवादी (d) आशावादी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य मम्मट का काव्यशास्त्र को योगदान का मूल्यांकन कीजिये ?

2– ध्वनिवि"ाधियों के तीनों मतों पर प्रकाष डालिये।

3– ध्वानि के विविध अर्थों पर प्रकाश डालिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य आनन्दवर्धन का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान पर प्रकाष डालियें।

2– आचार्य मम्मट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान का उल्लेख करते हुए उनके कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये ?

3– ध्वन्यालोक के प्रतिपाद्य विषय का विवेचन कीजिये।

इकाई–7 आचार्य कुन्तक एवं आचार्य क्षेमेन्द्र

इकाई की रूपरेखा

7.1– इकाई परिचय

7.2– उद्दे”य

7.3– आचार्य कुन्तक का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

7.4– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

7.4.1 वर्णविन्यास वक्रता

7.4.2 पदपूर्वार्धवक्रता

7.4.3 पदपरार्धवक्रता

7.4.4 वाक्यवक्रता

7.4.5 प्रकरणवक्रता

7.4.5 प्रकरणवक्रता

7.4.6 प्रबन्धवक्रता

7.5– काव्यशास्त्र को कुन्तक की देन

7.6– आचार्य क्षेमेन्द्र का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

7.7– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

7.8– काव्यशास्त्र को क्षेमेन्द्र की देन

7.9– बोध प्रश्न

7.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में 'संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-III) प्र”न–पत्र निर्धारित है, जिसके खण्ड–2 काव्य”ाास्त्र के अन्तर्गत इकाई–7 आचार्य कुन्तक एवं आचार्य क्षेमेन्द्र से सम्बन्धित है, जिसमें इनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में अध्ययन किया जायेगा।

7.2 उद्देश्य : प्रकृत इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –

- आचार्य कुन्तक के जन्म–समय एवं जन्म–स्थान के विषय में जान सकेंगे।
- आचार्य कुन्तक के कर्तृत्व से अवगत हो सकेंगे।
- वक्रोक्ति के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- क्षेमेन्द्र के कर्तृत्व से अवगत हो सकेंगे।
- औचित्यसिद्धान्त की समझ विकसित कर सकेंगे।

7.3 आचार्य कुन्तक का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

आचार्य कुन्तक का एकमात्र ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' है, जो अपूर्ण है। ग्रन्थ के आरम्भ में कुन्तक ने अपने विषय में कोई जानकारी नहीं दी है और ग्रन्थ की समाप्ति पर कुछ परिचय दिया हो इसका पता नहीं चल पाता। तथापि उनके द्वारा उद्धृत कवियों, आचार्यों और ग्रन्थों के उदाहरणों से उनकी पूर्वसीमा तथा उनके परवर्ती ग्रन्थों में उनके विषय में लिखे गए तथ्यों से उनकी पूर्वसीमा का निर्धारण किया जाता है।

राधेश्याम मिश्र ने वक्रोक्तिजीवितम् के संस्करण में कुछ तथ्यों का निर्देश कर उनकी पूर्वसीमा का निर्धारण किया है–

कुन्तक ने आनन्दवर्धनकृत ध्वन्यालोक की इस कारिका को उद्धृत किया है–

"ननु कैश्चित् प्रतीयमानं

वस्तु ललनालावण्यसाम्याल्लावण्यमित्युपपादितमिति"

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।

इसके अतिरिक्त ध्वन्यालोक के वृत्ति अंश को भी उद्धृत किया है। वृत्ति का मंगलाचरण–

"स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छः" को उद्धृत किया। अतः इससे स्पष्ट होता है कि कुन्तक ध्वन्यालोक के कारिकांश तथा वृत्यंश से ज्ञात थे। अतः कुन्तक आनन्दवर्धन के परवर्ती सिद्ध होते हैं।

आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ में राजशेखर के ग्रन्थों का उद्धरण भी उल्लेखित किये हैं तथा साथ ही आलोचना भी की है। इस प्रकार कुन्तक महिमभट्ट के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

महिमभट्ट ने व्यक्तिविवेक, विद्याधर ने एकावली, नरेन्द्रप्रभसूरि ने अलंकारमहोदधि में कुन्तक का नाम निर्देश किया है। महिमभट्ट ने अपने ग्रन्थ व्यक्तिविवेक में कुन्तक का उल्लेख किया है–

काव्यकांचनकषाश्ममानिना, कुन्तकेन निजकाव्यलक्ष्मणि।

यस्य सर्वनिरवद्यतोदिता श्लोक एष स निदर्शितो मया।।

इससे स्पष्ट होता है कि कुन्तक का समय राजशेखर (880–920 ई) के पश्चात् तथा महिमभट्ट के पूर्व अर्थात् 11 वीं सदी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

कुन्तक ने प्रथम उन्मेष के अन्त में लिखा है–"इति श्रीराजानककुन्तकविरचिते वक्रोक्तिजीविते काव्यालंकारे प्रथम उन्मेषः" इससे ज्ञात होता है कि काव्यालंकार विषयक ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् के रचयिता राजानक कुन्तक हैं। कुन्तक कश्मीर निवासी थे।

7.4 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् है, जो अपूर्ण प्राप्त है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। पूर्व में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसके उद्धरण ही प्राप्त होते थे बाद में डॉ एस. के. डे ने दो अपूर्ण पाण्डुलिपियों के आधार पर इसका सम्पादन कर सर्वप्रथम 1923 में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में कुन्तक की मौलिकता और सूक्ष्म विवेचन शैली द्वारा सम्पूर्ण काव्यतत्वों को वक्रोक्ति में ही समाविष्ट कर दिया। वक्रोक्तिजीवितम् में 4 उन्मेष हैं, जिनमें वक्रोक्ति के सभी अंगो का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है। इन्होंने काव्य का व्यापक गुण वक्रोक्ति को स्वीकार किया है। आचार्य ने वक्रोक्ति का विस्तार करते हुए वक्रोक्ति के 6 भेद किए–

- वर्णविन्यासवक्रता
- पदपूर्वार्धवक्रता
- परार्धवक्रता
- वाक्यवक्रता
- प्रकरणवक्रता
- प्रबन्धवक्रता

ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम सभी अलंकारों का वाक्य वक्रता में अन्तर्भाव किया है।

रस का अन्तर्भाव प्रेयस् उर्जस्वि अलंकारों के मध्य किया है। वस्तुतः वक्रोक्ति के बीज भामह ने "वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः, कोऽलंकारोऽनया विना" काव्यालंकार में अंकुरित किया। वक्रोक्ति की जो मूल कल्पना भामह ने प्रदर्शित की उसी की व्यापक विकास साहित्यिक तत्व के रूप में आचार्य कुन्तक ने किया। वक्रोक्तिजीवितम् के तीन भाग हैं– कारिका, वृत्ति और उदाहरण।

वक्रोक्तिजीवितम् के प्रथम उन्मेष में काव्य का प्रयोजन, काव्य का लक्षण और षड्विध वक्रता का सामान्य परिचय स्थापित किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में वृत्ति भाग में कुन्तक ने शिव की वन्दना करते हुए उन्हें 'शक्तिपरस्पन्दमात्रोपकरण' कहा है। प्रथम कारिका में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना करते हैं।

काव्य का प्रयोजन कुन्तक ने नवीन शैली में प्रतिपादित किया है। कुन्तक ने अलंकार ग्रन्थ का अलग प्रयोजन तथा अलंकार्य काव्य का पृथक् प्रयोजन बताया है। असामान्य आह्लाद को उत्पन्न करने वाले वैचित्र्य की सिद्धि अलंकार ग्रन्थ का प्रयोजन है। काव्य का प्रयोजन स्पष्ट करते हैं कि काव्य का पहला प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि, समुचित व्यवहार का बोध कराना, काव्य का दूसरा प्रयोजन है। काव्य का प्रयोजन काव्यास्वाद से सहृदयों को तत्काल आनन्द की अनुभूति कराना है।

काव्यलक्षण– आचार्य कुन्तक का मानना है कि अलंकृत शब्द और अर्थ ही काव्य होते हैं। काव्यलक्षण के लिए वे कारिका में कहते हैं –

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।

अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने वाले एवं वक्रकविव्यापार से सुशोभित होने वाले वाक्यविन्यास में साहित्ययुक्त शब्द और अर्थ काव्य होते हैं। उनके अनुसार काव्य में अलंकार और अलंकार्य की अलग–अलग सत्ता ही नहीं होती–

"तत्वं सालंकारस्य काव्यता, तेनालङ्कृतस्य काव्यत्वमितिस्थितिः न पुनः काव्यस्यालंकार योग इति"।

वस्तुतः कुन्तक का 'वक्रोक्तिजीवितम्' काव्यलक्षण की व्याख्या को ही वर्णित करता है। उनके काव्यलक्षण में जिन तत्त्वों का उन्होंने व्याख्यान किया है वे निम्न हैं–

- शब्द और अर्थ
- साहित्य

- वक्रकविव्यापार
- बन्ध
- तद्विदाह्लादकारित्व

कुन्तक ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य माना है। उनके अनुसार केवल रमणीयता विशिष्ट शब्द अथवा केवल चारुता विशिष्ट अर्थ काव्य नहीं होता। शब्द को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं–"शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि" अर्थात् काव्य में वही शब्द, शब्द होता है जो कि विवक्षित अर्थ के बहुत वाचकों के विद्यमान होने पर भी उस अर्थ का एकमात्र वाचक होता है।

अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– काव्य में वही अर्थ, अर्थ है जो कि अपने स्वभाव की रमणीयता से सहृदयों को आह्लादित करने में समर्थ हो– "अर्थः सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दरः"।

आचार्य कुन्तक ने साहित्य की विशिष्ट व्याख्या की। उनके अनुसार जहाँ पर वक्रता से विचित्र गुणों एवं अलंकारों की संपत्ति में परस्पर स्पर्धा लगी रहती है और यह परस्पर स्पर्धा शब्द की दूसरे शब्द के साथ तथा अर्थ की दूसरे अर्थ के साथ अभिप्रेत है। आचार्य कुन्तक ने साहित्य का लक्षण इस प्रकार किया–

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसा

अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः।।

अर्थात् शब्द और अर्थ की उस स्थिति को साहित्य कहते हैं जो सौन्दर्यशालिता के प्रति अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने के विषय में दोनों की अपनी सजातीयों के साथ परस्पर स्पर्धा के कारण रमणीय होती है। जब सौन्दर्यशालिता के प्रति शब्द अपने सजातीयों के साथ तथा अर्थ अपने सजातीयों से स्पर्धा करेगा तो निश्चित ही दोनों मिलकर रमणीय काव्य की सृष्टि करेंगे। कुन्तक के अनुसार अलंकृत शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं किन्तु जब अपोद्वार बुद्धि से अलंकार्य और अलंकार का विभाग करते हैं तब शब्द और अर्थ अलंकार्य होते हैं और उनका अलंकार केवल वक्रोक्ति ही होती है। वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि शास्त्र अथवा लोकप्रसिद्ध उक्ति से अतिशायिनी विचित्र उक्ति को वक्रोक्ति कहते हैं –

"वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा"

और यह वक्रोक्ति वैदग्ध्यभङ्गीभणितिस्वरूप वाली होती है अर्थात् काव्यकुशलता की विच्छिति द्वारा किए गए कथन को वक्रोक्ति कहते हैं।

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को अलंकार कहा है किन्तु यह अलंकार उपमानुप्रास आदि नहीं है अपितु काव्य के सभी तत्त्व हैं। इस प्रकार वे वक्रोक्ति अलंकार को सम्पूर्ण काव्य का तत्त्व स्वीकार करते हैं और अलंकार तथा अलंकार्य का विवेचन करते हैं– **"कासौ वक्रोक्तिः, वक्रोक्तिरेव प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी वैदग्ध्यभङ्गीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं तस्यभङ्गीविच्छितिः, तया भणितिः विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते"।।**

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के 6 भेदों का सामान्य परिचय इस प्रकार है–

7.4.1 वर्णविन्यास वक्रता– जहाँ पर वर्णों अर्थात् अक्षरों को उनके सामान्य प्रयोग करने के ढंग से भिन्न रमणीय ढंग द्वारा विन्यस्त किया जाता है जिसके कारण उनका वह विन्यास सहृदयों को आह्लादित करने में समर्थ होता है। कुन्तक ने इस वक्रता को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि अन्य आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित अनुप्रास प्रकार और यमक प्रकारों का अन्तर्भाव इसमें हो जाता है। औचित्य इस वक्रता का प्राण है। वर्ण्यमान के औचित्य न रहने पर यह वक्रता नहीं रहती।

एको द्वौ बहवो वर्णाः बध्यमानाः पुनः पुनः

स्वल्पान्तरास्त्रिधासोक्ता वर्णविन्यासवक्रता

वर्णान्तयोगिनः स्पर्शद्विसक्तास्तलनादयः

रेफादिभिश्च संयुक्ता प्रस्तुतौचित्यशोभिनः।।

यमक भी वर्णविन्यासवक्रता का एक प्रकार है।

वर्णविन्यासवक्रता के अनन्तर वे पदपूर्वार्धवक्रता पर विचार करते हैं।

7.4.2 पदपूर्वार्धवक्रता का द्वितीय प्रकार पर्यायवक्रता है।

पदपूर्वार्धवक्रता के 11 भेद प्रदर्शित किए हैं–

रूढिवक्रता, पर्यायवक्रता, उपचारवक्रता, विशेषणवक्रता, सवृतिवक्रता, कृदादिवक्रता, आगमवक्रता, वृत्तिवक्रता, भाववक्रता, लिङ्गवक्रता, क्रियावैचित्र्यवक्रता।

रूढिवक्रता– वर्ण्यमान पदार्थ के प्रशंसनीय उत्कर्ष के प्रतिपादन हेतु कवि जहाँ वाच्य रूढिशब्द के द्वारा असम्भवनीय अभिप्राय की प्रतीति कराते हैं, वहाँ रूढिवैचित्र्यवक्रता होती है।

पर्यायवक्रता– जहाँ किसी वस्तु के अनेक पर्याय होने पर भी कवि अतिशय वैचित्र्य की सर्जना के लिए किसी विशेष प्रयास का ही उपपादन करते हैं, वहाँ

पर्यायवक्रता होती है।

उपचारवक्रता– उपचार के कारण इसे उपचारवक्रता कहा जाता है। पदार्थ के लोकोत्तर सौन्दर्य का प्रतिपादन करने के लिए जहाँ अत्यन्त भिन्न स्वभाव वाले पदार्थों के धर्म का अल्पमात्र भी साम्यता के आधार पर दूसरे पदार्थों पर आरोपित कर दिया जाता है, उपचारवक्रता कही जाती है।

7.4.3 पदपरार्धवक्रता– पद प्रातिपदिक या धातु के पर में जुड़ने वाले प्रत्ययों से होने वाली वैचित्र्य को पदपरार्धवक्रता कहा जाता है। इसके 6 भेद हैं –

- कालवक्रता
- कारकवक्रता
- संख्यावक्रता
- पुरुषवक्रता
- उपग्रहवक्रता
- प्रत्ययवक्रता

7.4.4 वाक्यवक्रता– सुकुमार, विचित्र एवं मध्यम मार्गों में विद्यमान वक्र शब्दों, अर्थों, गुणों एवं अलंकारों के सौन्दर्य से भिन्न कवि की लोकोत्तर कुशलतारूप किसी अनिर्वचनीय ढंग की शक्ति के ही प्राण वाली वाक्य की वक्रता होती है। जिस प्रकार सुन्दर चित्र में उसके फलक–रेखा–विन्यास, रंग और कान्ति से भिन्न ही चित्रकार की कुशलता।

7.4.5 प्रकरणवक्रता– अनेक वाक्यों का समूह और सम्पूर्ण प्रबन्ध का एक अंश प्रकरण कहलाता है। जहाँ कवि इन प्रकरणों को अपनी सहज और आहार्य सुकुमारता से रमणीय बना देता है वहाँ प्रकरणवक्रता होती है। कुन्तक ने 9 प्रकार की प्रकरणवक्रता का वर्णन किया है। पहली प्रकार की प्रकरणवक्रता में कवि पुरातनी कथा में अपनी स्वतन्त्रता के आधार पर अपने अभीष्ट अर्थ को प्रस्तुत करता है, जिससे न तो मूल का उच्छेद होता है और न ही इस नई कल्पना के उत्थान के विषय में कोई शंका रहती है। जैसे– रघुवंश में कालिदास द्वारा उपनिबद्ध किया गया रघु और कौत्स का प्रकरण।

7.4.6 प्रबन्धवक्रता– कुन्तक ने प्रबन्धवक्रता के अनेक भेदों का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार जिस इतिहास के आधार पर कवि अपने प्रबन्ध की कथावस्तु को प्रस्तुत करता है, उसी इतिहास में जिस रस का निर्वाह किया गया है उसकी

उपेक्षा करके जहां कवि सहृदयाह्लाद की सृष्टि करने के लिए नवीन रस को प्रस्तुत करता है, वह प्रबन्ध की पहली वक्रता है। यथा– महाभारत पर आधारित वेणीसंहार और रामायण पर आधारित उत्तररामचरितम् कुन्तक के अनुसार "रामायणमहाभारततयोश्च शान्ताङ्गित्वं पूर्वसूरिभिः निरूपितम्" अर्थात् रामायण और महाभारत का अंगी रस शान्त रस माना गया है, जबकि वेणीसंहार का अंगी रस वीर और उत्तररामचरित का करुण विप्रलम्भ है।

7.5– काव्यशास्त्र को कुन्तक की देन

आचार्य कुन्तक का काव्यशास्त्रीय परम्परा में अविस्मरणीय योगदान है। अपने ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् द्वारा उन्होंने काव्य के व्यापक तत्त्व वक्रोक्ति का विस्तृत विश्लेषण किया। वक्रोक्ति दो शब्दों से मिलकर बना है– वक्र और उक्ति। जिसका तात्पर्य है ऐसी युक्ति जो सामान्य से अलग हो अर्थात् टेढ़ा कथन। यद्यपि कुन्तक को वक्रोक्तिसिद्धान्त की प्रतिष्ठा और प्रतिपादन का श्रेय प्राप्त है, तथापि इसकी प्राचीन परम्परा रही है। भामह और उनके पूर्ववर्ती कवियों बाण, सुबन्धु आदि में भी इसके सन्दर्भ मिलते हैं। भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार माना। उनके अनुसार इसके बिना वाक्य काव्य न रहकर वार्तामात्र रह जाती है। दण्डी ने भी वक्रोक्ति को भामह के समान महत्त्व दिया। दण्डी ने अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति को समस्त अलंकारों का मूल माना है। आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति की स्वतन्त्र रूप में व्याख्या तो नहीं की परन्तु इसे विशिष्ट अलंकार मानकर इसके भेदों को स्वीकार किया। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवितम् में वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहा है। उन्होंने वक्रोक्ति के अन्तर्गत सभी काव्यसिद्धान्तों का समाहार करते हुए समस्त काव्यतत्वों वर्ण चमत्कार, शब्दसौन्दर्य, विषयवस्तु की रमणीयता, अप्रस्तुतविधान, और प्रबन्ध कल्पना को उचित स्थान दिया है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को केवल वाक्चातुर्य अथवा उक्ति चमत्कार नहीं माना, अपितु इसे कविव्यापार अथवा कवि कौशल के रूप में स्वीकार किया है। कुन्तक का वक्रोक्तिसिद्धान्त व्यापक और समन्वयवादी है। इसकी उद्भावना के मूल में अलंकार सिद्धान्त की परम्परा के साथ ध्वनिसिद्धान्त है। कुन्तक के वक्रोक्तिसिद्धान्त में सम्पूर्ण काव्य को स्वीकृति मिली है।

7.6 आचार्य क्षेमेन्द्र का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

विभिन्न विषयों के विपुल काव्य की सर्जना करने वाले महाकवि क्षेमेन्द्र अलंकार जगत में 'औचित्यसम्प्रदाय' के संस्थापक हैं। क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में अपना देश–काल एवं वंश का वर्णन किया है। अपनी रचनाओं में इन्होंने अभिनवगुप्त के अतिरिक्त किसी अन्य का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में पण्डित मधुसूदन शास्त्री कॉल के मत का उल्लेख

किया है। क्षेमेन्द्र 990ई. के बाद ही उत्पन्न हुए होंगे और 1065 ई. के लगभग उनकी मृत्यु हुई होगी। बृहत्कथामंजरी और भारतमंजरी में उल्लिखित श्लोक से उन्होंने यह मत प्रस्तुत किया–

श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः

आचार्यशेखरमणेरविद्याविवृतिकारिणः।।

जिस समय अभिनवगुप्त उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा की विवृतिविमर्शिनी टीका लिख रहे थे, उस समय क्षेमेन्द्र उनके यहाँ साहित्य पढ़ रहे थे। अभिनवगुप्त के अनुसार प्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी टीका का रचनाकाल 1014 ईस्वी के लगभग है। अतः क्षेमेन्द्र का जन्म काल 990 ई. के लगभग माना जा सकता है।

डॉ कांतिचन्द्र पाण्डे के अनुसार अभिनवगुप्त का समय 990–91 ई से 1014–15 ई माना है। औचित्यविचारचर्चा में क्षेमेन्द्र ने लिखा है– "राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः" तथा कविकण्ठाभरण में "तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः" द्वारा अनन्तराज का उल्लेख किया है। अनन्तराज ने कश्मीर में 1028 ई से लेकर 1063 ईसवी तक राज्य किया, और यही क्षेमेन्द्र का समय माना जा सकता है।

क्षेमेन्द्र का जन्म कश्मीर में हुआ था। इसका जन्म सारस्वत ब्राह्मणवंश में हुआ था। क्षेमेन्द्र का अन्य नाम व्यासदास भी था। उनके प्रपितामह का नाम भोगेन्द्र था तथा पितामह का नाम सिन्धु था। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। क्षेमेन्द्र के पुत्र का नाम सोमेन्द्र था, जो स्वयं कुशल कवि था।

क्षेमेन्द्र ने अभिनवगुप्त से साहित्य विद्या का अध्ययन किया। अपने गुरु गंगकवि का भी उन्होंने औचित्यविचारचर्चा में उल्लेख किया है। बृहतकथामंजरी में क्षेमेन्द्र ने अपने अन्य गुरु सोम का आदरपूर्वक स्मरण किया है, जिन्हें उन्होंने भागवताचार्य की संज्ञा दी है। क्षेमेन्द्र ने उनसे वैष्णवी शिक्षा ग्रहण की थी। देवधर नाम के व्यक्ति का भी उल्लेख है जिनकी प्रेरणा से उन्होंने बृहतकथामंजरी की रचना की थी। वस्तुतः क्षेमेन्द्र किसी राजा के कविरत्न थे ऐसा उल्लेख उनके कृ तियों में नहीं मिलता है। तथापि उनकी कृतियों में अनन्तराज का नामतः उल्लेख मिला है। क्षेमेन्द्र एक स्वतन्त्र प्रकृति के साहित्यकार थे। जीविकोपार्जन हेतु किसी राज्याश्रय की आवश्यकता नहीं थी। वे तो अपनी कृति दर्पदलन में कहा है कि राजसेवा में नियुक्त कवियों द्वारा की गयी। चित्रालंकारहारिणी रचना को वेश्या के समान माना है, जहाँ वे लोभवश कविता को दूसरों के विलास का साधन बना देते हैं।

क्षेमेन्द्र ने स्वयं को 'सर्वमनीषी शिष्य' कहा है, तथापि उनके तीन गुरु – अभिनवगुप्त, गंगक और सोमपाल प्रमुख थे।

क्षेमेन्द्र का बचपन सुख–सौन्दर्य में व्यतीत हुआ। सामाजिक वर्ग वेश्या, लोहार, महाजन, शैव, वैष्णव, कश्मीरी आदि को उन्होंने समीपता से देखा। इसलिए जीवन के विषय में इन्हें व्यापक बहुमुखी और बृहद् अनुभव मिला। इनके समय में कश्मीर की सामाजिक दशा अच्छी न थी। समाज की दशा पतन की ओर जा रही थी। यही कारण है कि इन्होंने व्यङ्ग्यों, यथार्थ वर्णन और नीति उपदेश को आधार बनाकर रचनायें की। शैव होने पर भी क्षेमेन्द्र ने बौद्धावदानकल्पलता में भगवान् बुद्ध की प्रशंसा की और दशावतारचरित में भगवान् मानकर दश अवतारों में स्थान दिया। व्यास के प्रति अगाधश्रद्धा के कारण ही वे व्यास को अपना गुरु मानकर स्वयं को व्यासदास कहते थे।

7.7 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

क्षेमेन्द्र की 33 रचनाएं हैं जो ज्ञात हैं, जिनमें से 18 प्रकाशित हैं तथा 15 अप्रकाशित हैं। इन अप्रकाशित ग्रन्थों का पता उनके प्रकाशित ग्रन्थों में किये उल्लेख से पता चलता है। इनके कर्तृत्व को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है –

- पद्यात्मक सूक्ष्म रूपान्तर
- उपदेशात्मक
- रीति सम्बन्धी
- फुटकल

मनोहर लाल गौड़ ने अपने ग्रन्थ 'आचार्य क्षेमेन्द्र' में इनकी सम्पूर्ण कृतियों को चार भागों में विभाजित किया है–

- **पद्यात्मकसूक्ष्म रूपान्तर**– इसके अन्तर्गत 5 रचनाएं आती हैं–

(i) **रामायणमंजरी**– वाल्मीकिकृत रामायण का संक्षिप्त रूप प्रदर्शित है। 11वीं सदी में रामायण के पाठ के विषय में जानकारी मिलती है।

(ii) **भारतमंजरी**– यह महाभारत का संक्षिप्त रूप है। इसमें महाभारत की छोटी से छोटी घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

(iii) **बृहतकथामंजरी**– यह गुणाढ्य कृत बृहत्कथा का संक्षिप्त रूपान्तर है। इसमें 19 लम्बक है। रोचकता का अभाव है।

(iv) **दशावतारचरित**– भगवान विष्णु के 10 अवतारों का उल्लेख है।

(v) **बौद्धावदान कल्पलता**– बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा का प्रमाण यह ग्रन्थ है। इसमें जातक कथाएं संकलित हैं। यह 108 पल्लवों में निबद्ध है। क्षेमेन्द्र ने इसे अधूरा लिखा था, जिसे बाद में उनके पुत्र सोमदेव ने पूरा किया।

- **उपदेशात्मक रचनाएं**– इसमें सात रचनाएं वर्गीकृत हैं। इन रचनाओं में दोषों को त्यागकर पवित्र जीवन की ओर जाने का उपदेश दिया गया है।

(i) **चारुचर्या शतक**– इसमें नीति और शील की शिक्षा है। यह 100 अनुष्टुप छन्दों में निबद्ध है।

(ii) **सेव्यसेवकोपदेश**– इसमें स्वामी और सेवक के सम्बन्धों की चर्चा है। स्वामी और सेवक के सम्बन्धों को स्थायी और मधुर बनाने के लिए व्यवहारनीति का उपदेश दिया है।

(iii) **दर्पदलन**– इसमें 7 अध्याय हैं, जिसमें अभिमान की निन्दा की गयी है। अभिमान के कारणों का उल्लेख है।

(iv) **चतुर्वर्गसंग्रह**– पुरुषार्थ–चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की आदर्श व्याख्या है।

(v) **कलाविलास**– इस रचना में नायक मूलदेव अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को विविध कलाओं के बारे में समझाता है।

(vi) **देशोपदेश**– इसमें कश्मीर की दुर्बलताओं का वर्णन है। व्यङ्ग्य द्वारा इन विषयों पर कटाक्ष किया गया है। यह 8 उपदेशों में विभक्त है।

(vii) **नर्ममाला**– इसमें धूर्त कायस्थ पर व्यङ्ग्य किया है। यह व्यङ्ग्यात्मक रचना है। दम्भ, रिश्वतखोरी और चतुरता का उल्लेख है।

- **रीतिग्रन्थ**– क्षेमेन्द्र के रीति सम्बन्ध तीन ग्रन्थ हैं–
    - कविकण्ठाभरण
    - औचित्यविचारचर्चा
    - सुवृत्ततिलक

कविकण्ठाभरण में कविशिक्षा, औचित्यविचारचर्चा में काव्यालोचन के औचित्यमार्ग की स्थापना तथा सुवृत्ततिलक में छन्दों का उल्लेख है।

(i) **कविकण्ठाभरण**– 5 सन्धियों तथा 55 श्लोक कारिकाओं में निबद्ध इस

ग्रन्थ में अकवि को कवि बनाने की शिक्षा वर्णित है। प्रथम सन्धि में शिक्षार्थी के तीन भेद बताए गए हैं– अल्पप्रयत्नसाध्य, कष्टसाध्य तथा असाध्य। इनमें पहले दो को कविरुचिनिपुणता प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए यह उल्लिखित कर असाध्य को अनुद्देश्य कहा है। द्वितीय सन्धि में काव्यरचना के व्यावहारिक अभ्यास बताए गए हैं, जिसमें 100 उपायों का निर्देश है। तृतीय सन्धि में कविता में चमत्कार का उल्लेख है। कविता में चमत्कार को काव्य का आवश्यक तत्त्व स्वीकार किया है तथा उसके भेद–प्रभेदों का वर्णन है। चतुर्थ सन्धि में गुण–दोषों की चर्चा है। पंचम सन्धि में कवि की लोकशास्त्र विषयक वस्तुओं का उल्लेख है।

(ii) **औचित्यविचारचर्चा**– यह एक समीक्षा ग्रन्थ है, जिसमें औचित्य को काव्य का आत्मतत्त्व स्वीकार किया है। इसके अनुसार औचित्य रस, अलंकार आदि सभी के मूल में अन्तर्व्याप्त हैं। उन्होंने 27 काव्यस्थानों का उल्लेख किया है, जिनमें औचित्य और अनौचित्य की परीक्षा की गयी है। सर्वत्र औचित्य है और औचित्य के अभाव में भी उदाहरण वर्णित किए हैं। क्षेमेन्द्र ने कालिदास जैसे महाकवियों के पद्य में भी अनौचित्य प्रदर्शित किया है।

(iii) **सुवृत्ततिलक**– तीन विभागों की विभक्त यह छन्दशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके पहले विन्यास में छन्दों का संग्रह, दूसरे विन्यास में गुण–दोषों का वर्णन तथा तीसरे में छन्दप्रयोग का विवेचन है।

- फुटकल रचनाएं

(i) **लोकप्रकाशकोश**– कुछ विद्वान् इसके रचनाकार क्षेमेन्द्र को मानते हैं।

(ii) **नीतिकल्पतरु**– यहाँ वेदव्यास के नीतिपद्यों पर लिखी गयी व्याख्या है।

(iii) **व्यासाष्टक**– इसमें व्यास की स्तुति की गयी है, जो अष्ट श्लोकात्मक है।

7.8 काव्यशास्त्र को क्षेमेन्द्र की देन

क्षेमेन्द्र औचित्यसम्प्रदाय के आचार्य हैं। जिसमें उन्होंने औचित्य को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। औचित्यतत्त्व काव्यालोचकों की दृष्टि में पहले से ही रहा है। नाट्यशास्त्र पहला समीक्षा ग्रन्थ है। भरत ने कहा है कि– वय के अनुरूप वेष होना चाहिए, वेष के अनुरूप चलना–फिरना, चलने–फिरने के अनुरूप पाठ्य हो तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय हो। वेष के विषय में वे कहते हैं कि देश के अनुसार यदि वेष न हो तो वह सौन्दर्यजनक नहीं होगा। मेखला को गले में पहनने पर हंसी ही होगी –

देशजो हि वेषस्तु न शोभा जनयिष्यति

मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते।।

इससे स्पष्ट होता है कि भरत ने औचित्य को पर्याप्त आदर दिया। दण्डी ने भी से अत्रत्यं गुणपदं औचित्यपरम् कहकर गुण शब्द का अर्थ औचित्य किया है। अतः दण्डी ने भी असाक्षात् रीति से काव्य में औचित्य को स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने औचित्य की विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने कविता के दो दोष बताये – व्युत्पत्ति (ज्ञान) के न होने से तथा प्रतिभा के बल पर। इनमें से पहला साधारण है जो प्रतिभा के बल पर छिप सकता है। किसी शैली के गुणयुक्त और दोषयुक्त होने का निर्णायक क्या हो सकता है, इस पर आचार्य आनन्दवर्धन ने वक्ता और बोद्धा का औचित्य को इसका नियामक माना है। उन्होंने रसभंग का कारण और अनौचित्य माना है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं माना। औचित्य का अनुसरण करना ही रसयोजना का परम रहस्य है।

महिमभट्ट ने अपने व्यक्तिविवेक में औचित्य के दो भेद शब्दौचित्य और अर्थौचित्य उल्लेख किया है। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने औचित्य को काव्य में स्वीकार किया है। वस्तुतः औचित्य की विवेचना और मूल्यांकन क्षेमेन्द्र ने किया। क्षेमेन्द्र ने पुस्तक में पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया है। "औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्" के द्वारा काव्य की आत्मा औचित्य को माना है। क्षेमेन्द्र का मानना है कि औचित्य रस का जीवित है। यदि वह काव्य में न हो तो वहाँ अलंकारों का प्रतिपादन करने तथा गुण आदि की मिथ्या योजना करने से कोई लाभ नहीं। क्योंकि काव्य का स्थिर जीवित तो औचित्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र के अनुसार औचित्य गुणों और अलंकारों से भिन्न तत्व है तथा इसका काव्य में वही स्थान है, जो शरीर में जीवित (आत्मा) का। रस को काव्य की आत्मा मानने वालों को क्षेमेन्द्र ने कहा है कि काव्य का स्थिर जीवित औचित्य है। रसादि काव्य में प्राणपद पायेगा भी तो अस्थिर रूप से। अलंकार का उद्देश्य है, काव्य की शोभा बढ़ाना और यह तभी सम्भव है जब उनका विन्यास औचित्यपूर्ण हो। यही बात गुणों के सन्दर्भ में भी लागू होती है। औचित्य का लक्षण करते हुए क्षेमेन्द्र कहते हैं–

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल् यस्य यत्।

उचितस्य हि यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

अर्थात् कोई वस्तु यदि दूसरी वस्तु के अनुरूप सदृश होती है तो आचार्य लोग उसे उचित कहते हैं। उचित के भावतत्त्व को ही औचित्य कहते हैं। वे बताते

हैं कि कालिदास के शाकुन्तलम् में दुष्यन्त ने शकुन्तला की स्मृति में शकुन्तला का जो चित्र बनाया उसके अतिरिक्त उसमें आसपास का वातावरण, मालिनी नदी, हंसयुगल, मृग, वृक्षों की शाखाओं पर लटकते वल्कलवस्त्र तथा बाँया नेत्र खुजलाती मृगी को भी चित्रित किया है। इससे वातावरण के साथ सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई। ऐसे ही जो संयोग स्वर्ण के साथ काँच का होता है, उतना चाँदी का नहीं। काव्य में भी संयोजन क्रिया की प्रमुखता रहती है। अतः काव्य में प्रयुक्त पदार्थों का आपस में सादृश्यता अनुरूप हो यह अपेक्षा रहती है। क्षेमेन्द्र ने इसे गुण, रस तथा अलंकार में विद्यमान बताया है। काव्य के 28 अंगों की गणना कर उन अंगों में भी औचित्य का निरूपण करते हैं।

क्षेमेन्द्र ने औचित्य का विस्तार से सोदाहरण विवेचन कर सिद्ध किया है कि काव्य की आत्मा औचित्य है और औचित्य का थोड़ा बहुत मूल्यांकन सभी आचार्यों द्वारा किया गया है। आनन्दवर्धन ने इसका कुछ विस्तार किया तथा क्षेमेन्द्र ने उसे आधार मानकर स्वतन्त्र मार्ग की स्थापना की। उनका मानना है कि काव्य में रस रसस्थानीय है और औचित्य आत्मस्थानीय।

औचित्यमार्ग द्वारा क्षेमेन्द्र ने काव्यकला को जीवन के निकट ला दिया। रस, अलंकार आदि सिद्धान्त आदर्शवादी हैं, जीवन के साथ उनका सम्बन्ध कम है। कवियों माघ, भट्टनारायण आदि की रचनाओं में जीवन की झलक कम जबकि कला का प्रदर्शन ही अधिक दिखाई देता है। वहीं औचित्य जीवन से जुड़ा गुण है, जीवन के पक्ष में भी उचित अनुचित का क्रम दीखता है। क्षेमेन्द्र ने जिस औचित्य तत्त्व की व्याख्या की वह भाव और भाषा, तथा रूप और रस दोनों पर समान प्रभाव रखता है। औचित्य के द्वारा अलंकार, गुण, रीति की तरह की रसध्वनि आदि की व्याख्या हो जाती है। इस प्रकार काव्य में सर्वाधिक व्यापक तत्त्व औचित्य ही है। काव्य का जीवन औचित्य है, जिस काव्य में औचित्य नहीं उसमें गुण, अलंकार होने पर भी व्यर्थ है। इस प्रकार काव्यशास्त्र में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित औचित्यसम्प्रदाय समादृत है।

7.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– वक्रोक्तिसम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं –

(a) क्षेमेन्द्र (b) आनन्दवर्धन (c) कुन्तक (d) रुद्रट

2– कुन्तक ने वक्रोक्ति के भेद बतायें हैं –

(a) 03 (b) 04 (c) 05 (d) 06

03– कविकण्ठाभरण के रचनाकार हैं –

(a) कुन्तक (b) रुद्रट (c) भामह (d) क्षेमेन्द्र

04– औचित्यसम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं –

(a) अभिनवगुप्त (b) कुन्तक (c) क्षेमेन्द्र (d) महिमभट्ट

05– व्यक्तिविवेक के रचयिता हैं –

(a) मम्मट (b) विश्वनाथ (c) महिमभट्ट (d) कुन्तक

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– कुन्तक का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान का उल्लेख कीजिये ?

2– क्षेमेन्द्र के कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

3– क्षेमेन्द्र के जीवन–परिचय पर प्रका"ा डालिये।

4– आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के कितने भेद माने है? किसी एक पर प्रकाश डालिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य क्षेमेन्द्र के कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये ?

2– आचार्य कुन्तक के कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये ?

MAST-111

संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 3

आयुर्वेदशास्त्र (भाग 1)

इकाई–8 आचार्य चरक **103–110**

'चरक' शब्द का अर्थ, आचार्य चरक का समय, चरक एवं कनिष्क, चरक एवं पतंजलि, चरक संहिता, आचार्य चरक की आयुर्वेद को देन।

इकाई–9 आचार्य सुश्रुत एवं आचार्य वाग्भट **111–123**

सुश्रुत का जीवन–परिचय, जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, आचार्य सुश्रुत की आयुर्वेद को देन, वाग्भट का जीवन–परिचय, जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, वाग्भट का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, आयुर्वेद को वाग्भट की देन।

mÙkj inss’k jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;
mÙkj insś'k iz;kxjkt

ijke'kZ lfefr

izk0 lhek flag	dqyifr] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
duZy fou; dqekj	dqy lfpo] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izk0 lR;iky frokjh	funs’kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0]iz;kxjkt

fo'k;"kK lfefr

izk0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt
izk0 gfjnÙk 'kekZ	vkpk;Z ,oa iwoZ v/;{k] lLdr foHkkx b0fo0fo] iz;kxjkt
izk0 dk'kyUnz ik.Ms;	vkpk;Z ,o v/;{k] lkfgR; lLdr foHkkx dkfgfofo] okjk.kh
izk0 mes'k iz rki flag	vkpk;] lLdr foHkkx dk'kh fgfofo] okjk.klh
Mk- fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr ¼lfonk½

lEikn@ifjekid

izk0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd ekufodh fo|k'kk[kk m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

ys[kd

Mk0 x.ks'k Hkkxor	lgk;d vkpk;Z] lLdr foHkkx jktdh; egkfo|ky;] xqIrdk'kh] #nziz;kx] mÙkjk[k.M

leUo;d

Mk0 fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt

2023 ¼eqfnzr½

© m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo’ofo|ky;] iz;kxjkt&2023

ISBN- 978-81-19530-76-2

mRrj insa'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt lokZf/kdkj lqjf{krA bl ikB~;lkexzh dk dksbZ Hkh va'k mRrj insa'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky; dh fyf[kr vuqefr fy, fcuk fefe;kxzkQ vFkok fdlh vU; lk/ku ls iqu% iLrqr djus dh vuqefr ugha gSA
ukV % ikB; lkexzh esa efnzr lkexzh ds fopkjksa ,oa vkdMksa vkfn ds izfr fo’ofo|ky;] mÙkjnk;h ugha gSA

izdk’ku % mÙkj insa’k jktf"kZ V.Mu fo’ofo|ky;] iz;kxjkt
izdk’kd % dqy lfpo] duZy fou; dqekj m0iz0 jktf"kZ V.Mu fo’ofo|ky;] iz;kxjkt &2023
enzd%& pUnzdyk ;fuoly ikboV fyfeVsM] 42@7 tokgjyky usg: jksM] iz;kxjkt

खण्ड–3

आयुर्वेदशास्त्र (भाग–1)

प्रस्तावना : सुश्रुत का जीवन–परिचय, जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, आचार्य सुश्रुत की आयुर्वेद को देन। आचार्य वाग्भट, वाग्भट का जीवन–परिचय, जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, वाग्भट का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय वाग्भट का आयुर्वेद को देन।

'आयुषोः वेदः ज्ञानम् आयुर्वेदः' अर्थात् आयु का ज्ञान आयुर्वेद कहलाता है। जिस शास्त्र के द्वारा आयुष्य का हित, सुख–दुःख, आयु का ज्ञान प्राप्त होता है, वह शास्त्र आयुर्वेद है। आयुर्वेद के आठ अंग– कायचिकित्सा, शल्यचिकित्सा, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, ऊर्ध्वांगचिकित्सा, भूतविद्या, रसायन, और वाजीकरण हैं। इन आठ अंगों में कायचिकित्सा तथा शल्यचिकित्सा प्रधान है। उसमें भी कायचिकित्सा विशेष रूप से प्रमुख है। इस शास्त्र के अनुसार मानव को स्वस्थ रहने के लिए प्रयास करना चाहिए। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति ही नहीं है बल्कि यह अथर्ववेद का उपवेद भी है। पुराणों में इसको पंचम वेद की संज्ञा प्राप्त है। यह ग्रन्थ लौकिक और पारलौकिक दोनों के लिए हितकारी है। आयु का वेद होने से इसकी व्यापकता सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक समस्त प्राणियों के लिए है।

इकाई–8 आचार्य चरक

इकाई की रूपरेखा

8.1– इकाई–परिचय

8.2– उद्देश्य

8.3– चरक शब्द का अर्थ

8.4– आचार्य चरक का समय

8.5– चरक एवं कनिष्क

8.6– चरक एवं पतंजलि

8.7– चरक संहिता

8.8– आचार्य चरक का आयुर्वेद को देन

8.9 बोध प्रश्न

8.1 इकाई–परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृत्तीय सेमेस्टर में संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-III) शीर्षक प्र"न–पत्र निर्धारित है। इसी प्र"न–पत्र खण्ड–3 दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग आयुर्वेद"ाास्त्र है। इस इकाई में आचार्य चाक, आचार्य सुश्रुत एवं आचार्य वाग्भट के विषय में अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –

- आयुर्वेद के स्वरूप को जान सकेंगे।
- आचार्य चरक के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- चरक–संहिता के प्रतिपाद्य विषय को समझ सकेंगे।
- आयुर्वेद को चरक के योगदान को जान सकेंगे।

8.3 चरक शब्द का अर्थ

चरक संहिता का रचयिता आचार्य चरक को माना जाता है। आचार्य चरक का उल्लेख भारतीय ज्ञान परम्परा में प्राप्त होता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने

ग्रन्थ में अनेक विद्वानों के तर्कों को उपस्थापित करते हुए निम्न उदाहरण प्रस्तुत किए हैं –

काशिका ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि कृष्णयजुर्वेद की एक शाखा चरक नाम से जानी जाती है, तथा उस शाखा के अध्येता चरक कहलाते थे– "चरक इति वैशम्पायनशाखा, तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते"।

चरक शब्द 'चर्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है चलना। चरक वे ऋषि थे जो एक स्थान पर न रहकर विचरण करते रहते थे। बौद्धग्रन्थ ललितविस्तर में इसका उल्लेख प्राप्त होता है कि कुछ विद्वान् घूम–घूम कर ज्ञानोपदेश देते थे और अपने विषय के अनुरूप ही इन्हें श्रमण, ब्राह्मण, चरक और परिव्राजक आदि कहा जाता था। प्रो. त्रिपाठी तथा डा गिरजाशंकर अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि वराहमिहिर ने अपने बृहज्जातक नामक ग्रन्थ में प्रव्रज्यायोग के अन्तर्गत चरक को ग्रहण किया है –

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः।

शाक्याजीविकभिक्षुवृद्ध चरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः।।

अर्थात् जिसके जन्म काल में 4 या 4 से अधिक ग्रह एक स्थान में स्थित हो तो प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास योग होता है। इसकी व्याख्या में भट्टोत्पल ने लिखा है कि योगाभ्यास में कुशल तथा मुद्रा (योग की विशिष्ट अवस्था) को धारण करने वाले चिकित्सा कार्य में निपुण व्यक्ति को चरक कहते हैं, जो सम्प्रदाय विशेष है। भावप्रकाश के अनुसार शेषनाग ने पृथ्वी का वृत्तान्त जानने के लिए किसी पण्डित के यहाँ जन्म लिया था। क्योंकि ये गुप्तचर रूप में आए थे, अतः इनका नाम चरक प्रसिद्ध हो गया। 'भारतीय शास्त्र एवं शास्त्रकार' ग्रन्थ में भी लेखक ने कुछ उदाहरण दिए हैं–

पाणिनि सूत्रों में प्राप्त 'कठचरकाल्लुक्' (4.3.101) तथा 'माणवकचरकाभ्यां खञ्' (4.3.14) सूत्र से कुछ विद्वान् चरक को पाणिनि का पूर्ववर्ती मान बैठते हैं किन्तु यहाँ कठ शब्द के साहचर्य से चरक शाखा लक्षित होती है न कि व्यक्ति विशेष की।

सायण तैत्तिरीय संहिता में आये चरकाचार्य पद की व्याख्या करते हुए वंशाग्रवर्तक–बांस के अगले भाग पर नाचने वाले नट को चरक कहा है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उस समय भी चरक शाखा से सम्बन्धित व्यक्ति चिकित्सा में दक्ष होते थे। कृष्णयजुर्वेद की शाखा के अनुयायी चरक कहे जाते हैं। और ये चरक एक जगह स्थिर न रहकर इधर–उधर विचरण करते थे।

संन्यासी होने से यह चरिका पर जीवन व्यतीत करते थे और चिकित्सा कार्य में निपुण होते थे।

8.4 चरक का समय

चरक का वास्तविक समय ज्ञात नहीं हो पाता है। कनिष्क के राजकवि अश्वघोष के ग्रन्थ में चरक का उल्लेख मिलता है। कनिष्क का समय ई. की पहली शताब्दी निर्धारित है। अतः चरक का काल उनसे कुछ पूर्व का रहा होगा।

याज्ञवल्क्यस्मृति में चरक के विषयों का उल्लेख है, अतः चरक तीसरी सदी से पूर्व थे।

वाग्भट ने भी चरक को उद्धृत किया है, अतः चरक का समय छठी सदी से पूर्व का होगा।

मनुस्मृति एवं पतंजलि से अनेक साम्यता रखने पर चरक का काल ई.पू. द्वितीय शताब्दी निर्धारित होती है। इस प्रकार चरकसंहिता में उपलब्ध विवेचित सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार चरक का समय शुंगकाल ई.पू. द्वितीय शताब्दी निर्धारित किया जा सकता है ।

8.5 चरक एवं कनिष्क

त्रिपिटक के चीनी अनुवाद में उल्लेख मिलता है कि चरक कनिष्क का राज्यवैद्य था, तथा उसने कनिष्क की रानी का असाध्य रोग को ठीक किया। इसलिए पाश्चात्य विद्वान् चरक को प्रथम शताब्दी में मानते हैं। कनिष्क बौद्ध धर्मानुयायी था, किन्तु चरकसंहिता में बौद्ध सम्प्रदाय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। चरकसंहिता में वैदिक परम्परा के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

वमन औषध पीने का मन्त्र द्रष्टव्य है –

ओम् ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः।

ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते।।

इसके अलावा उपायहृदय में भी चरक का नाम नहीं प्राप्त होता। जबकि उपायहृदय के कर्ता नागार्जुन कनिष्क के समकालिक माने जाते हैं। आचार्य प्रियव्रत शर्मा अश्वघोष को कनिष्क का राजकवि मानते हैं। अश्वघोष की दो रचनाएं बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द है। इन दोनों ग्रन्थों में आयुर्वेद की पर्याप्त

सामग्री का उल्लेख है। अशोक के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उसने चरकसंहिता का उपयोग किया था, परन्तु चरक का नामोल्लेख नहीं किया। वल्कि मूल उपदेष्टा का उल्लेख किया –

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।

चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद।।

अतः स्पष्ट होता है कि चरक अश्वघोष के पूर्व थे।

8.6 चरक एवं पतंजलि

पतंजलि को भगवान् शेषनाग का अवतार माना जाता है। इसी कारण कुछ लोग चरक और पतंजलि को एक मानते हैं। नागेश भट्ट के 'चरके पतंजलि' तथा चक्रपाणि की 'पातंजलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः' इन वाक्यों के आधार पर विज्ञानभिक्षु और भावमिश्र ने चरक और पतंजलि को एक ही माना है, परन्तु सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि चरक और पतंजलि एक व्यक्ति न होकर भिन्न–भिन्न हैं। पतंजलि व्याकरण के भाष्यकार हैं तथा चरक आयुर्वेद के भाष्यकार। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास' में अनेक प्रमाण देकर चरक और पतंजलि को अलग–अलग व्यक्ति सिद्ध किया है–

चक्रपाणि के पातंजलमहाभाष्य इत्यादि श्लोक से नेपाल के राजगुरु हेमराज शर्मा ने अपना मत प्रकट करते हुए स्पष्ट किया कि चरक नाम से पूर्व प्रसिद्ध किसी ग्रन्थ विशेष के प्रतिसंस्कर्ता पतंजलि हैं, परन्तु चरक ही पतंजलि है ऐसा स्पष्ट नहीं होता।

महाभाष्य में पतंजलि ने स्वयं को 'गोर्नदीयस्तवाह' कहा है परन्तु चरकसंहिता में कहीं भी गोनर्द देश का उल्लेख नहीं मिलता। यदि चरक और पतंजलि एक व्यक्ति होते तो पांचाल, पंचनद आदि देशों के साथ–साथ गोनर्द का भी उल्लेख करते।

योगसूत्र और व्याकरण महाभाष्य में पतंजलि का नाम व्यवहार करने वाला व्यक्ति वैद्यक ग्रन्थ में चरक नाम क्यों लिखता? तथापि पूरे ग्रन्थ में अपना वास्तविक नाम पतंजलि का उल्लेख तो कर ही देता।

चरकसंहिता तथा योगसूत्र में शैली भिन्नता है। चरकसंहिता 'सम्भाषा या उपदेश रूप' में है, जबकि योगसूत्र की रचना 'सूत्र–शैली' में हुयी है। योगसूत्र

के योग के आठ अंगों का भी चरकसंहिता में उल्लेख नहीं मिलता।

इसके अतिरिक्त महाभाष्य में कुछ स्थलों पर आयुर्वेद के विषय प्राप्त होते हैं यथा –वार्तिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, ज्वर, नड्वलोदक, पादरोग इन लोकप्रसिद्ध उदाहरणों से ज्ञात होता है कि भाष्यकार आयुर्वेद के सामान्य रूप से परिचित थे परन्तु इससे उनका आयुर्वेद के ज्ञाता चरक होना सिद्ध नहीं होता। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि चरक तथा पतंजलि अलग–अलग व्यक्ति हैं।

8.7 चरक संहिता

चरक का एकमात्र ग्रन्थ 'चरकसंहिता' आयुर्वेद का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें न केवल औषधियों की सूची बल्कि पूर्ण व्यवहारशास्त्र का विवेचन है। इसमें आयुर्वेद की परिभाषा, प्रवृत्ति, आयु, आयु के लक्षण, व्यक्ति की आदर्श दिन–रात्रिचर्या, रोग, रोगोत्पत्ति के कारण, दोष, पंचक्रम और द्रव्यगुणों धर्मप्रभृति तत्त्वों पर विस्तार से विवेचन किया गया है। चरकसहिंता में 8 स्थान तथा 120 अध्याय हैं।

(i) सूत्रस्थान– इसमें 30 अध्याय हैं। वैद्यक सम्बन्धी सामान्य बातों की चर्चा है। इसमें अन्न–पान विधि, शुकधान्य, शमीधान्य, मास, दुग्ध आदि बारह वर्गों का विस्तार से वर्णन किया है।

(ii) निदानस्थान– इसमें 8 अध्याय हैं।

(iii) विमानस्थान– इसमें 8 अध्याय हैं। विमान का तात्पर्य है– दोषादि का मान। इसके अतिरिक्त इस अध्याय से तत्कालिक अध्ययन–अध्यापन विधि की जानकारी प्राप्त होती है।

(iv) शरीरस्थान– इसमें 8 अध्याय हैं।

(v) इन्द्रियस्थान– इसमें 12 अध्याय हैं।

(vi) चिकित्सास्थान– इसमें कुल 30 अध्याय हैं। यह विस्तृत है। इसमें अन्तिम 17 अध्याय दृढ़बल के द्वारा लिखित हैं।

(vii) कल्पस्थान – इसमें 12 अध्याय है

(viii) सिद्धस्थान – इस अन्तिम स्थान में 12 अध्याय हैं।

इस प्रकार 41 अध्याय दृढ़बल द्वारा रचित है। चरकसंहिता के शारीरस्थान में पंचमहाभूत तथा चेतना के मिलने से पुरुष के उत्पन्न होने का वर्णन है। इसमें ईश्वर, प्रकृति तथा आत्मा के विषय में आवश्यक चर्चा के बाद मोक्ष, उत्तमसंतान विधि, सूतिकागृह, प्रसूति तथा कौमारभृत्य का वर्णन है। कायचिकित्सा तथा आध्यात्मिक दृष्टि के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इन्द्रियस्थान में उन लक्षणों का वर्णन है, जिसमें निश्चित मृत्यु जानी जाती है, जिन्हें रिष्ट कहते हैं। इसमें वैद्य को बताया गया है कि रिष्ट का ज्ञान होने पर उसे असाध्य रोगों के निवारण के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए।

चिकित्सास्थान को चरकसहिंता का प्राण माना जाता है। इस विशद विवेचन से यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी– 'चरकस्तु चिकित्सिते'।

कल्पस्थान में वमन, विरेचन, द्रव्यों और उनके विभिन्न रूपों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ के निदान तथा विमानस्थानों में औषधि–संग्रह, जनपदोध्वंस, वैद्य हेतु शास्त्रपरीक्षा, गुरु परीक्षा, अध्ययन–अध्यापन विधि, सम्भाषा परिषद् तथा चिकित्सा एवं उसके उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है।

चरक के अनुसार जब वायु, जल, देश और काल विकृत होते हैं तब समूची औषधियाँ भी विकृति को प्राप्त हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में रोगों से मुक्ति के लिए औषधि सेवन के अतिरिक्त सत्य, दया, दान, देवपूजा, सद्वृत्ति, बलिवैश्वदेवपूजा, ब्रह्मचर्यपालन, धर्मकथा, सेवा, सत्संगति आदि द्वारा जीवन के भयंकर समय में मनुष्य की रक्षा हो सकती है।

चरकसंहिता में अग्निवेश की शंकाओं का भगवान् आत्रेय द्वारा समाधान किया गया है। वे कहते हैं कि वायु आदि की विकृति का मूल कारण अधर्म है या फिर पुनर्जन्मकृत अपराध जिसे 'प्रज्ञापराध' कहा जाता है। आचार्य चरक कहते हैं जब समाज में प्रधान लोगों द्वारा अधर्म किया जाता है तो सामान्य लोग उसका अनुकरण करने लगते हैं, जिससे धर्म प्रायः तिरोहित हो जाता है। ऐसी स्थिति में देवगण इनका साथ छोड़ देते हैं, ऋतुओं में विकार उत्पन्न हो जाता है, वर्षा नहीं होती, पृथ्वी, जल, वायु में भी विकृति आ जाती है, जिससे औषधियाँ अपने स्वाभाविक गुणों को छोड़ देती है।

8.8 आचार्य चरक की आयुर्वेद को देन

चरकसहिंता आयुर्वेद का महान् ग्रन्थ है, जिसमें आयुर्वेदशास्त्र के मौलिक विषयों तथा सिद्धान्तों का गम्भीरतापूर्वक विवेचन किया गया। आचार्य चरक ने चरकसंहिता

द्वारा आयुर्वेद को जनमानस तक पहुंचाने का महनीय एवं स्तुत्य प्रयास किया है। चरक द्वारा आयुर्वेद के क्षेत्र में किये गए अभूतपूर्व कार्यों से चरक और आयुर्वेद में घनिष्टता परिलक्षित होती है। यह घनिष्ठता इतनी है कि एक का स्मरण करते ही दूसरा अनायास ही मानसपटल पर आ जाता है। यह आयुर्वेद शाश्वत् एवं सत्य है। जो ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, इन्द्र, भारद्वाज, पुनर्वसु, आत्रेय, एवं अग्निवेश से प्रवर्तित होकर आचार्य चरक को प्राप्त हुआ, जो उपदेश चरकसंहिता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि चरकसंहिता से आत्रेय, अग्निवेश तथा दृढ़बल का सम्बन्ध है तथापि आचार्य चरक अधिक प्रतिष्ठित हुए। इस चरकसंहिता में लोक–कल्याणकारी जनसामान्य के रोग–शोक को दूर करने वाले उपाय हैं। यह ग्रन्थ न केवल लोक में अपितु परलोक के लिए भी हितकारी है। आचार्य चरक ने कहा कि तमस् और रजस् गुणों से निवृत होने पर व्यक्ति में सहज गुण का उदय होता है, तत्पश्चात् अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर प्रकृति–पुरुष का विवेक ज्ञान हो जाता है। शरीर के आरोग्य सुख को आचार्य चरक महान् सुख मानते हैं। यद्यपि वह मोक्षप्राप्ति के लिए भी उपाय बताते हैं, किन्तु चतुर्वेद पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु लम्बे जीवन की आवश्यकता होती है और दीर्घजीवन स्वस्थशरीर से ही प्राप्त हो सकता है। आचार्य चरक के विचार सांख्यदर्शन से प्रेरित थे। वे समस्त दुःखों और रोगों का कारण उपधा को मानते हैं। उपधा का दूसरा नाम तृष्णा है। यही उपधा दुःखों और दुःख के आश्रयभूत शरीर की उत्पत्ति का कारण है। यह चरकसंहिता चिकित्साजगत् का प्रामाणिक एवं महान् ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण जीवनपद्धति, आहार–चर्या, ऋतु–चर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या आदि का सुन्दर विवेचन है। चरकसंहिता द्वारा उपदिष्ट तत्त्व अत्यन्त ही लाभकारी है। द्वादश सहस्र (बारह हजार) श्लोकात्मक ग्रन्थ को पढ़ने और अर्थ जानने वाला व्यक्ति दीर्घायु, यशस्वी, ऋद्धि तथा सम्पूर्ण आरोग्यता को प्राप्त करता है, ऐसा चरक ने पाठ के फल महत्त्व में बताया है। चरक चरकसंहिता के प्रतिसंस्कर्ता हैं। जो ग्रन्थ पूर्व में संक्षेप में कहा गया हो उसे विस्तार से प्रस्तुत करना और जो अतिविस्तार से कहा गया है उसे सुन्दर मार्ग से संक्षेप करना ही संस्कर्ता कहा जाता है। लोकोपयोगी इस ग्रन्थ में हितभुक, मितभुक्, ऋतभुक् को निरोगी कहा है अर्थात् जो अपथ्य नहीं खाता, परिमित में खाता है, परिश्रम और ईमानदारी से खाता है, वही नीरोग है। जो नित्य सौ कदम चलता है, बाँयी करवट सोता है, मूत्र और शौच के वेग को नहीं रोकता, वह नीरोग है– **कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक? हितभुक् मितभुक् ऋतभुक्। शतपदगामी च वामशायी च अविजितमूत्रपुरीषः खगवर! सोऽरुक् सोऽरुक् सोऽरुक्**। इस प्रकार आचार्य ने चरकसंहिता द्वारा स्वस्थ–शरीर हेतु जीवनपद्धति लोकसमाज के सामने प्रस्तुत किया। आयुर्वेद के इस अतुल्य ग्रन्थ का परवर्ती आचार्यों द्वारा अनुकरण किया गया। इस ग्रन्थ से प्राचीन भारतीय जीवन–पद्धति एवं भारतीय–समाज का वर्णन प्राप्त होता है। आयुर्वेद के क्षेत्र में

आचार्य चरक का नाम आदरणीय और अविस्मरणीय रहेगा। आज सम्पूर्ण विश्व आयुर्वेद द्वारा उपदिष्ट जीवन–पद्धति तथा आयुर्वेदिक उपचार हेतु प्रवृत्त हो रहा।

8.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– चरकसंहिता के प्रतिसंस्कर्ता हैं–

(a) वाग्भट (b) उद्भट (c) चरक (d) विश्वनाथ

2– चरकसंहिता में कितने स्थान हैं–

(a) 6 (b) 9 (c) 8 (d) 12

3– चरकसंहिता में अध्यायों की संख्या है–

(a) 8 (b) 30 (c) 41 (d) 120

4– निम्न में से चरकसंहिता में कौन सा स्थान नहीं है–

(a) निदानस्थान (b) शरीरस्थान (c) इन्द्रियस्थान (d) गुणस्थान

5– चरकसंहिता में कुछ अध्याय किसके द्वारा रचित है–

(a) वाग्भट (b) सुश्रुत (c) आत्रेय (d) दृढ़बल

6– चरकसंहिता में अग्निवेश की शंकाओं का समाधान किसके द्वारा किया गया है–

(a) सूर्य (b) विष्णु (c) आत्रेय (d) चन्द्र

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– चरक और पतंजलि पर टिप्पणी कीजिए?

2– चरक संहिता पर संक्षेप में प्रकाश डालिए?

3– आचार्य चरक की आयुर्वेद को देन पर प्रकाश डालिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य चरक के जन्म–समय एवं कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

इकाई–9 आचार्य सुश्रुत एवं आचार्य वाग्भट

9.1– इकाई परिचय

9.2– उद्देश्य

9.3– सुश्रुत का जीवन–परिचय

9.4– जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

9.5– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

9.6– आचार्य सुश्रुत की आयुर्वेद को देन

9.7– वाग्भट का जीवन–परिचय

9.8– जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

9.9– वाग्भट का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

9.10– आयुर्वेद को वाग्भट की देन

9.11 बोध प्रश्न

9.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में निर्धारित 'संस्कृत"ाास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-111) प्र"न–पत्र के खण्ड–3 प्रथम भाग की इकाई–9 आयुर्वेद शास्त्र के अनेक आचार्यों में से आचार्य सुश्रुत एवं आचार्य वाग्भट से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत दोनों आचार्यों के विषय में अध्ययन किया जायेगा।

9.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी–

- आचार्य सुश्रुत के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- सुश्रुत संहिता के विषय में जान सकेंगे।
- अष्टाङ्ग आयुर्वेद के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वाग्भट के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- वाग्भट की कृतियों के विषय में जान सकेंगे।

9.3 सुश्रुत का जीवन–परिचय

सुश्रुत प्राचीन भारत के महान् चिकित्साशास्त्री और शल्य चिकित्सक थे। ये आयुर्वेद के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुश्रुत–संहिता के प्रणेता हैं। इन्हें शल्यचिकित्सा का जनक कहा जाता है। आचार्य सुश्रुत धन्वन्तरि परम्परा के आचार्य हैं। सुश्रुतसंहिता के निदानस्थान में उल्लिखित श्लोक से ज्ञात होता है कि सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र थे। सुश्रुत ने शल्यचिकित्सा की शिक्षा धन्वन्तरि से प्राप्त की थी–

धन्वन्तरिधर्मभृतां वरिष्ठममृतोद्भवम्।

चरणावुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति।।

विश्वामित्र नाम के अनेक आचार्य हुए हैं, उनमें से एक का सम्बन्ध आयुर्वेद से है। दूसरी परम्परा का मत है कि प्रख्यात सुश्रुत शालिहोत्र के पुत्र थे। आचार्य सुश्रुत ने शल्यशास्त्र की शिक्षा दिवोदास धन्वन्तरि से प्राप्त की थी। शल्यशास्त्र को पृथ्वी पर दिवोदास धन्वन्तरि ही लाए थे। उत्तरतन्त्र में उल्लेख मिलता है कि विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत ने दिवोदास धन्वन्तरि से प्रश्न किया कि आप अष्टांग–आयुर्वेद के ज्ञाता हो, विद्वान् हो, आपने जो पूर्व में दोषों के 62 भेद नाममात्र बताए थे, अब विस्तार से वर्णन कीजिए–

अष्टांगायुर्वेदविदं दिवोदासं महामतिम्।

छिन्नशास्त्रार्थसन्देहं सूक्ष्मागाधमिवोदधिम्।।

अन्य स्थलों पर भी उल्लेख है कि सुश्रुत के पिता विश्वामित्र थे–

विश्वामित्रसुतः श्रीमान्सुश्रुतः परिपृच्छति।

द्विषष्टिदोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्तिताः।।

महाभारत के अनुशासनपर्व में भी विश्वामित्र के पुत्रों में सुश्रुत का नाम मिलता है। भावप्रकाश में भी ऋषि विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्र सुश्रुत को अध्ययन के लिए काशीपति दिवोदास के पास भेजने का उल्लेख मिलता है। डा त्रिपाठी के अनुसार विश्वामित्र शब्द गोत्रवाची है। अतः सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र अथवा विश्वामित्र गोत्र में उत्पन्न कोई व्यक्ति हो सकते हैं।

9.4 जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

दिवोदास धन्वन्तरि के उपदेशों को सुश्रुत ने अपनी सुश्रुतसंहिता में निबद्ध

किया जो शल्यतन्त्र का प्रथम ग्रन्थ बना। सुश्रुत के जन्म काल के विषय में मतभेद प्राप्त होते हैं, तथापि विद्वानों ने इनका समय 1000–1500 ईसवी पूर्व का माना है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कुछ प्रमाणों का उल्लेख किया है–

- नागार्जुन ने अपने ग्रन्थ 'उपाय–हृदय' में सुश्रुत का उल्लेख किया है, नागार्जुन कनिष्क का समकालिक था।
- सुश्रुतसंहिता में होरा शब्द का उल्लेख है। होरा ग्रीक भाषा के होरस से बना है। यह भारत में यूनान से आया। भारत का यूनान से सम्पर्क चौथी सदी पूर्व हुआ था। अतः सुश्रुत का काल चौथी सदी के बाद का है।
- सुश्रुतसंहिता में ग्रहों के नाम, उत्पत्ति, पूजा आदि का उल्लेख है, अतः सुश्रुत का समय गुप्तकाल से पूर्व का है।
- पाश्चात्य विद्वान् सुश्रुत का समय 9वीं शताब्दी ईस्वी से बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य विद्वान् हैस सुश्रुत को 12वीं शताब्दी, जोन्स विल्सन 9वीं से 10वीं शताब्दी का तथा अन्य विद्वान् चतुर्थ–पंचम शताब्दी का स्वीकार करते हैं।
- मैकडोनाल्ड ने सुश्रुत का समय ईसवी पूर्व चौथी शती से चौथी शती को स्वीकार किया है।

आयुर्वेद के इतिहास ग्रन्थ की रचना करने वाले अत्रिदेव विद्यालंकार ने लिखा है कि नागार्जुन ने उपाय–हृदय में 2000 वर्ष पूर्व सुश्रुत का नाम आदर से लिया है। डॉ.त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है– "अन्य प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि सुश्रुतसंहिता का समय बौद्ध धर्म के पश्चात् तथा चतुर्वर्णों में ब्राह्मणों की प्रधानता रहते समय में हुयी थी"। अतएव ईसा से लगभग चार–पांच सौ वर्ष पूर्व सुश्रुत ने सुश्रुतसंहिता की रचना की।

9.5 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

आचार्य सुश्रुत का सुश्रुतसंहिता आयुर्वेद एवं शल्यचिकित्सा का प्राचीन ग्रन्थ है। आयुर्वेद के 3 मूलभूत ग्रन्थों में सुश्रुतसंहिता एक है। सुश्रुतसंहिता, आयुर्वेद के वृहद्त्रयी चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगहृदय में से एक है। दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा उपदिष्ट सुश्रुतसंहिता की रचना की, जो शल्यतन्त्र का वृहद् साहित्य है। बाद में नागार्जुन ने पांचवीं शती में इस संहिता में उत्तरतन्त्र जोड़कर सम्पूर्ण संहिता का प्रतिसंस्कार किया। यद्यपि सुश्रुतसंहिता में अष्टांग–आयुर्वेद का वर्णन

मिलता है, तथापि इसमें शल्यचिकित्सा का विशद वर्णन है। अतः सुश्रुतसंहिता शल्यचिकित्सा की प्राचीनतम एवं आकर ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। आधुनिक शल्य चिकित्सकों के अनुसार शल्यचिकित्सा के जनक सुश्रुत हैं।

सुश्रुतसंहिता मुख्यतः पाँच स्थानों एवं 120 अध्यायों में विभक्त है। सूत्रस्थान निदानस्थान, शारीरस्थान, चिकित्सास्थान एवं कल्पस्थान में विभक्त है। कालान्तर में नागार्जुन ने उत्तरतन्त्र के 66 अध्यायों को भी इसमें जोड़ दिया। जिससे वर्तमान में संहिता में कुल 186 अध्याय हैं। इसमें रोगों, औषधीय पौधों, खनिज–स्रोतों पर आधारित प्रक्रियाओं, जन्तु–स्रोतों पर आधारित प्रक्रियाओं तथा आठ प्रकार की शल्यक्रियाओं का उल्लेख किया गया है। सुश्रुतसंहिता जो वर्तमान में उपलब्ध है वह दो भागों में विभक्त है–

- पूर्वतन्त्र
- उत्तरतन्त्र

सुश्रुतसंहिता में पूर्वतन्त्र मुख्यतः शल्य प्रधान है। इसमें 5 स्थान है।

1. **सूत्रस्थान**– इसमें 46 अध्याय हैं। जिसमें शल्यसिद्धान्त एवं शल्यजन्य व्याधियों का सामान्य विवरण है। इसके योगसूत्र में अस्त्र–शस्त्र, यन्त्र–उपयन्त्र की जानकारी है। सुश्रुत ने शल्यकर्म को सम्पन्न करने के लिए दो प्रकार के उपकरण बताए हैं–

- यन्त्र
- शस्त्र

यन्त्र धाररहित होते हैं। उनके छह प्रकार तथा 108 संख्या बतायी हैं। शस्त्र धार–युक्त होते हैं, उनकी संख्या 20 मानी है। उन्होंने शल्यकर्म में सिद्धहस्त होने के लिए शस्त्रों के कर्माभ्यास एवं अनेक प्रकार के प्रारूपों का वर्णन योग्या के अन्तर्गत किया है–

एवमादिषु मेधावी योग्यार्हेषु यथाविधिः।

द्रव्येषु योग्यां कुर्वाणो न प्रमुह्यति कर्मसु।।

तात्पर्य विधिपूर्वक योग्या (कर्माभ्यास) करने वाला बुद्धिमान चिकित्सक शल्यकर्म करते समय संशयग्रस्त नहीं होता है। इसमें उन्होंने शल्य–शस्त्रों का वर्णन किया है–

- शस्त्रों के मूठ एवं जोड़ मजबूत होने चाहिए।

- ये चमकीले और तीक्ष्ण होने चाहिए।
- शस्त्रों को साफ उबालकर, कोमल वस्त्रों में लपेटकर, सन्दूक (बक्सा) में बन्द करके रखना चाहिए।
- हड्डी टूट जाने पर जोड़ने के लिए बांस की पट्टियों का प्रयोग करना चाहिए। अस्थियों को ठीक बिठाने के लिए बाहर से मालिश का विधान बताया है।
- व्रणों के अनेक प्रकार एवं अलग–अलग उपचार–पद्धति का वर्णन।
- सिर एवं चेहरे पर कट–फट जाने पर बन्ध (टाका) लगाने का वर्णन।
- जख्मों में लौहकण या लौहखण्ड घुस जाने से चुम्बक के प्रयोग से बाहर निकालने की विधि
- सूजन वाले स्थान पर लेप का प्रयोग।
- कच्चे व्रणों को पकाने के लिए पुल्टिस बान्धना, सेकाई करना, रक्त निकालने या चीरा लगाने का विधान है।

2. **निदानस्थान**– इसमें 16 अध्याय हैं, जिसमें शल्य जनित व्याधियों के लिए निदान सम्प्राप्ति एवं उनके लक्षणों का विशद वर्णन है। इसमें ऑपरेशन (शल्य) से ठीक होने वाले जैसे अश्व (बवासीर), भगंदर (गुदा के पास होने वाला घाव) अश्मरी (मूत्राशय एवं पित्ताशय की पथरी), मां के गर्भ में ही बच्चे की मृत्यु, गुल्म (ट्यूमर) आदि रोगों का उपचार, लक्षण एवं चिकित्सा की जानकारी वर्णित है।

3. **शरीरस्थान**– यह स्थान 10 अध्यायों में विभक्त है। जिसमें शरीर–रचना से सम्बन्धित विषय उल्लिखित हैं। इसमें शरीर की परिभाषा, सम्पूर्ण गर्भ का वर्णन, पुरुष–सृष्टि का उत्पत्तिक्रम का विवेचन है। शरीर के अंग–प्रत्यंग, अवयव–अस्थि, मांसपेशी, स्नायु, कण्डरा, शिरा, धमनी, हृदय, फेफड़ों आदि का विवरण दिया है।

4. **चिकित्सास्थान**– इस स्थान में समस्त शरीरगत रोगों की शल्य चिकित्सा एवं औषधि चिकित्सा 40 अध्यायों में संकलित है। इसमें शल्यजन्य व्याधियों की चिकित्सा वर्णित है।

5. **कल्पस्थान**– इस स्थान में स्थावर एवं जंगम विषों के लक्षण, पहचान, विषों का औषधि प्रयोग एवं विषों से ग्रस्त व्यक्ति का चिकित्साक्रम वर्णित है।

उत्तरतन्त्र में 66 अध्याय हैं, जिनमें आयुर्वेद के शालाक्य, कौमारभृत्य, कायचिकित्सा तथा भूतविद्या का विवेचन है। इस तन्त्र का अन्य नाम औपद्रविक

भी है, क्योंकि इसमें शल्यक्रिया से होने वाले उपद्रवों के साथ ही ज्वर, पेचिश, हिचकी, खांसी, कृमिरोग, पीलिया (पाण्डु), कमलारोग आदि का वर्णन है।

सुश्रुतसंहिता में सुश्रुत ने तीन प्रकार के कर्म बताए हैं–

- पूर्वकर्म
- प्रधानकर्म
- पश्चात्कर्म

पूर्वकर्म से तात्पर्य ऑपरेशन से पूर्व किए जाने वाला कर्म यथा उपकरणों को तैयार रखना, रोगी को तैयार रखना आदि। प्रधानकर्म जो शस्त्रकर्म भी कहा जाता है, इसमें शल्य किया जाता है। पश्चात्कर्म ऑपरेशन के बाद किया जाने वाला कार्य पश्चात्कर्म कहलाता है। सुश्रुत ने शस्त्रकर्म के 8 प्रकार बताये –

- छेद्य– छेदन हेतु।
- भेद्य– भेदन हेतु।
- लेख्य– अलग करने हेतु।
- वेध्य– शरीर में हानिकारक द्रव निकालने के लिए।
- ऐष्य– नाड़ी में घाव ढूण्ढने हेतु।
- अहार्य– हानिकारक उत्पत्तियों को निकालने के लिए।
- विस्रव्य– द्रव निकलने के लिए।
- सीव्य–घाव सिलने के लिए।

इसे अष्टविध शस्त्रकर्म कहा जाता है। सुश्रुतसंहिता में दर्द को कम करने के लिए रोगी को अरिष्ट पिलाने का उल्लेख मिलता है। सुश्रुतसंहिता में उल्लिखित आयुर्वेद के 8 अंगों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

शल्यकर्म– विविध प्रकार के शल्यकर्म उल्लिखित हैं।

शालाक्य– ऊर्ध्वजु रोग–सिर, नेत्र, नासिका, एवं कर्ण आदि में उत्पन्न रोगों की शान्ति हेतु नेत्ररोग में शलाका द्वारा किया जाने वाला कर्म शालाक्य कहलाता है।

कायचिकित्सा– ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ रोगों की शान्ति के लिए किए जाने वाले उपाय को कायचिकित्सा कहा जाता है।

भूत–विद्या– देव, गन्धर्व आदि आवेश को शान्ति हेतु किये जाने वाले कर्म को भूत–विद्या कहते हैं।

कौमारभृत्य– बालकों के भरण–पोषण, धात्री की परीक्षा, आदि का विधान जिसमें वर्णित हो उसे कौमारभृत्य कहा जाता है।

अगद–तन्त्र– सर्प, कीट आदि दंश से उत्पन्न विष तथा अनेक प्रकार के स्थावर विषों की शान्ति हेतु जिसमें उपायों का उल्लेख हो अगद–तन्त्र है।

रसायन– आयु, बल और ओज की वृद्धि हेतु व्याधि समुदाय को दूर करने के लिए जिसमें उपाय बताए गए हों, वह रसायन कहलाता है।

बाजीकरण– क्षीणवीर्य दोष को दूर करने, शुक्र–संशोधन, पौरुष शक्ति में वृद्धि एवं वृद्धावस्था दूर करने का जिसमें वर्णन किया गया, वह बाजीकरण कहा जाता है।

9.6 आयुर्वेद को आचार्य सुश्रुत की देन

सुश्रुतसंहिता शल्यशास्त्र का आधारभूत ग्रन्थ है, जिसमें शल्यचिकित्सा की विधि और निर्देश दिया गया है, साथ ही कर्माभ्यास को महत्त्व दिया है। प्रत्यक्ष कर्माभ्यास में तभी कुशलता हो सकती है, जब संहिता के गूढ़ार्थ को समझा जाए। अतः कुशल शल्यचिकित्सक के लिए संहिता का ज्ञान तथा प्रत्यक्ष कर्माभ्यास अपेक्षित है। सुश्रुतसंहिता की यह विशिष्टता है कि संस्कृत का सामान्य ज्ञान जाने वाला व्यक्ति भी इस सुश्रुतसंहिता का अध्ययन करके आयुर्वेद के ज्ञान को समझ सकता है। रोग कैसे होता है? क्यों होता है? कैसे बढ़ता है? और उसकी चिकित्सा कब और कैसे करनी चाहिए? इसकी विवेचना सुश्रुतसंहिता में सरलता से की गयी है। दोष अपने स्थान पर संचित होते हैं और फिर वहाँ कुपित होकर फैलने लगते हैं तथा आगे स्थान में जाकर टिकते हैं, तत्पश्चात् रोग बन जाते हैं। यदि दोषों का नाश संचय काल में ही कर दिया जाए तो वे आगे नहीं बढ़ते हैं।

सुश्रुत ने आज से 3000 वर्ष पूर्व सर्वोत्कृष्ट इस्पात के उपकरण बनाए जाने की आवश्यकता बताई थी। उन्होंने उपकरण का तेज धार वाला होना तथा वे इतने तीक्ष्ण हों कि बाल को भी दो हिस्सों में काटने का सामर्थ्य हो। त्वचारोपण, आँखों के मोतियाबिन्द निकालने की विधि, गर्भस्थ शिशु को बाहर निकालने के विभिन्न प्रकारों की विधि सुश्रुतसंहिता में विस्तार से उल्लेख मिलता है। आजकल ऑपरेशन के लिए जिन यन्त्रों का उपयोग होता है, उनमें से अधिकांश का विवरण सुश्रुतसंहिता में मिलता है। सुश्रुतसंहिता में मनुष्यों की आन्त में कैंसर का कारण, उस कैंसर को शल्यक्रिया द्वारा दूर करने की विधि बतायी है। न्यूरो–सर्जरी रोग

मुक्ति हेतु नाड़ियों पर शल्य क्रिया का वर्णन है, साथ ही आधुनिक काल की प्लास्टिक सर्जरी का भी सविस्तार वर्णन है। सुश्रुतसंहिता के उपसंहार में आयुर्वेद का महत्त्व बताते हुए सुश्रुत कहते हैं कि चिकित्साशास्त्र से बढ़कर और कोई पुण्यतम नहीं सुना, क्योंकि वेद सनातन हैं और अक्षर हैं, तथा चिकित्साशास्त्र दृ ष्ट फल वाला है, सब प्राणियों से पूजित है।

इसमें शरीरक्रिया और शरीर–रचना का वर्णन उल्लिखित है। मर्मशरीर की अवस्थिति विषयक सुश्रुत का ज्ञान आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। शरीर–रचना का इस साहित्य में जितना विशद विवेचन हुआ है, उतना अन्य ग्रन्थ में नहीं है। इसी कारण 'शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः' अर्थात् शरीर–रचना की व्याख्या में सुश्रुत श्रेष्ठ हैं, उक्ति प्रसिद्ध हो गयी है।

9.7 वाग्भट का जीवन–परिचय

भारतीय वाङ्मय में अनेक वाग्भट का उल्लेख प्राप्त होता है। अष्टांग–हृदय के रचयिता वाग्भट हैं। किन्तु अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदय दोनों के रचयिता एक ही हैं अथवा भिन्न–भिन्न इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अत्रिदेवगुप्त का मत है कि दोनों ग्रन्थों के रचयिता एक ही विद्वान् वाग्भट्ट ने लिखे हैं। उनका मानना है कि दोनों की भाषा, भाव में साम्यता है, साथ ही पितृनाम भी समान है। अष्टांगसंग्रह गद्यपद्यमय विस्तृत ग्रन्थ है। जबकि अष्टांगहृदय पद्यमय रचना ळें अत्रिदेवगुप्त ने अपनी टीका में कुछ प्रमाणों का उल्लेख कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दोनों ग्रन्थों के रचयिता एक ही व्यक्ति वाग्भट हैं –

- वाग्भट के शिष्य इन्दु ने अपनी अष्टांगसंग्रह की टीका में कई स्थानों पर हृदय का भी उल्लेख किया है और दोनों के रचयिता को एक ही व्यक्ति माना है।
- वाग्भट ने भी अपने ग्रन्थ के अन्त में निर्देश दिया है कि अष्टांग वैद्यक रूपी समुद्र मन्थन से प्राप्त अष्टांगसंग्रह नामक अमृत का फल अल्पश्रम से ही लोगों को प्राप्त हो, एतदर्थ यह पृथक् ग्रन्थ बनाया गया है। तथा इस ग्रन्थ के अध्ययन से संग्रह को समझने की शक्ति से सम्पन्न अभ्यस्तकर्मा वैद्य कहीं पर घबरा नहीं सकता।
- वाग्भट के शिष्य और अष्टांगसंग्रह तथा अष्टांगहृदय दोनों के टीकाकार इन्दु ने उल्लेख किया है कि संग्रह और हृदय दोनों ही ग्रन्थ समकालिक हैं और दोनों ग्रन्थों के रचयिता एक ही आचार्य हैं।

- दोनों आचार्यों के पिता का नाम एक ही होना भी यह सिद्ध करता है कि अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदय दोनों की रचयिता एक ही आचार्य हैं।
- संग्रह तथा हृदय के कर्ता वाग्भट का यह कथन "इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः" दोनों ग्रन्थों में समान है। दोनों ग्रन्थों में मंगलाचरण पद्य का आरम्भ भी रागादिरोग पद से हुआ है। अतः संग्रह एवं हृदय के रचनाकार एक को मान लेना चाहिए।

वाग्भट ने ग्रन्थ में अपना परिचय दिया है। अष्टांगहृदय के प्रत्येक अध्याय के अन्त में वाग्भट्ट ने अपना और अपने पिता का नाम का ही उल्लेख किया है। इनके पिता का नाम सिंहगुप्त था।

वाग्भट वैदिक धर्मावलम्बी थे, तथापि वे बौद्धधर्म के प्रति भी श्रद्धा रखते थे। कुछ लोग उन्हें बौद्ध धर्मावलम्बी मानते हैं किन्तु अत्रिदेवगुप्त ने उन्हें वैदिक धर्मानुयायी सिद्ध किया है। उनका मानना है कि अपने समाज की प्रचलित कुरीतियों का त्याग तथा अन्य सद्विचारों को ग्रहण करना वाग्भट को अभीष्ट था, तथापि बुद्धावतार भी तो वैदिक सम्मत है और वे उस युग के महापुरुष थे, अतः उनकी बुद्ध में श्रद्धा थी। वाग्भट के शिष्य भी वैदिक धर्मावलम्बी थे। इनके शिष्यों द्वारा की गई टीकाओं में वैदिक देवताओं और आचार्यों का स्तवन किया है। इन्दु और जेजट इनके प्रमुख शिष्य थे।

संग्रह तथा हृदय के कर्ता वाग्भट का यह कथन "इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः" दोनों ग्रन्थों में समान है। दोनों ग्रन्थों में मंगलाचरण पद्य का आरम्भ भी रागादिरोग पद से हुआ है। अतः संग्रह एवं हृदय के रचनाकार एक को मानना उचित प्रतीत होता है।

9.8 जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

वाग्भट ने अपने ग्रन्थ में जन्म–स्थान का उल्लेख किया है– 'सिन्धुषु लब्धजन्मा' इसके अनुसार उनका जन्मस्थान सिन्धु प्रदेश प्रतीत होता है। वाग्भट का समय शकों के समकालिक रहा होगा। अष्टांगसंग्रह में पलाण्डु के गुणों का वर्णन करते हुए शकराज और शकांगनाओं का उल्लेख करते हैं। इतिहासकारों ने भारत में शकों का समय दूसरी से चौथी ईस्वीय शताब्दी तक माना है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में अन्य विद्वानों का मत उद्धृत कर उनका जन्म 800 ई. से लेकर 850 तक निर्धारित किया है। चक्रपाणि ने चन्द्रट (जो युगरत्न समुच्चय के प्रणेता हैं) का उल्लेख किया है। चक्रदत्त की रचना ग्यारहवीं सदी के

पूर्वार्ध में हुयी थी। चन्द्रट इनसे प्राचीन होंगे। चन्द्रट ने ही रसगंगाधर तथा अन्य वाग्भटों का निर्देश अपने समुच्चय में किया है। अतः इनका समय दसवीं शती होना चाहिए। इस प्रकार वाग्भट का समय नवम शती (800–850) निर्धारित किया है।

सुश्रुत से पूर्व चरकसंहिता और सुश्रुत के अनन्तर वाग्भट ने संग्रह और हृदय नामक ग्रन्थों की रचना की। सुश्रुतसंहिता की रचना पुष्यमित्र के बाद ब्राह्मणों की प्रधानता वाले समय में हुयी जबकि वाग्भट की रचना देश में शक राज्य की स्थापना के समय हुयी थी।

वाग्भट सिन्धु देश में उत्पन्न हुये थे। सिन्धु देश में जैसा पलाण्डु (प्याज) उत्पन्न होता है, वैसा देश के किसी अन्य हिस्से में नहीं। अतः स्वाभाविक है कि उस स्थान के रहने वाले विद्वान् ने वहाँ की गुणकारी वस्तु का उल्लेख किया है। वैसे भी पलाण्डु प्रकरण में उन्होंने प्याज के अनेक लाभकारी गुण बताएं हैं, जैसे– पलाण्डु 'लू' से बचने का उत्तम साधन है।

शकों का आगमन देश में ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ था। चीनी यात्री इत्सिंग ने जो सातवीं शताब्दी में आया था, भी अष्टांगसंग्रह के पठन–पाठन का वर्णन किया है। वाग्भट भट्टारहरिश्चन्द्र से पीछे हुये। भट्टारहरिश्चन्द्र का समय पांचवीं शताब्दी है। यह भट्टारहरिश्चन्द्र, साहसांकनृपति चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राजवैद्य था। चन्द्रगुप्त का समय 375 से 413 ईसवी है, और यही समय भट्टारहरिश्चन्द्र का है और उसके बाद वाग्भट का समय होना चाहिए। शकों को चन्द्रगुप्त ने हराकर भगाया था, तब वे सौवीर–सिन्ध में बस गए। अतः उपयुक्त विवेचन से वाग्भट का समय पाँचवीं शताब्दी का पूर्वार्ध मानना उचित है।

वाग्भट के पिता सिंहगुप्त तथा पितामह वाग्भट थे। उनके गुरु 'आलोकित' नामक बौद्धभिक्षु थे।

9.9 वाग्भट का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

वाग्भट ने दो ग्रन्थ अष्टांगसंग्रह एवं अष्टांगहृदय की रचना की, दोनों प्रकाशित एवं उपलब्ध हैं।

अष्टांगसंग्रह– अष्टांगसंग्रह में वाग्भट इस ग्रन्थ निर्माण का हेतु बताते हुए कहते हैं–

तेषामेकैकमव्यापि समस्तव्याधिसाधने

प्रतितन्त्राभियोगे तु पुरुषायुषसंक्षयः।।

भवत्यध्ययनेनैव यस्मात् प्रोक्तः पुनः पुनः

तन्त्रकारैः स एवार्थः क्वचित कश्चित् विशेषतः।।

तेऽर्थप्रत्यायनपरा वचने यच्च नादृताः।।

स्वान्यतन्त्रविरोधानां भूयिष्ठं विनिवितंकः

युगानुरूपसन्दर्भो विभागेन करिष्यते।।

नित्योपयोगिदुर्बोधं सर्वांगव्यापि भावतः

संगृहीतं विशेषेण यत्र कायचिकित्सितम्।।

इस ग्रन्थ का अध्ययन कर लेने से आयुर्वेद–चिकित्सा सम्बन्धी कोई विषय शेष नहीं रह जाता है। इसमें चरक, सुश्रुत से अतिरिक्त अन्य आचार्यों के सिद्धान्तों का भी वर्णन है। एक ही ग्रन्थ के पठन–पाठन से आयुर्वेद का ज्ञान करा देने वाला यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय हुआ है।

अष्टांगसंग्रह में 120 अध्याय हैं तथा 4 स्थान हैं। इसमें सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पसिद्धि और उत्तरतन्त्र हैं।

संक्षेपतः अष्टांगसंग्रह में 08 प्रकार का विभाजन है –

1. औषध।
2. स्वस्थवृत्त (दिनचर्या,ऋतुचर्या)।
3. निर्देश (औषधि विज्ञान)।
4. कल्पना (औषध बनाने की विधि)।
5. भोजना (औषधि देने के रूप)।
6. अन्नपान विधि (द्रव्य–अद्रव्य विधि विज्ञान)।
7. यन्त्र–शस्त्र प्रणिधान– (औषध बनाने के यन्त्र व चिकित्सा में प्रयोग वाले उपकरण)।
8. द्वयसंग्रह– भूतविद्या–मानस रोग तथा रोग विज्ञान ।

आहार–विहार के नियम, आचरण का पालन करने की दृष्टि से अष्टांगसंग्रह

की रचना की।

अष्टांगहृदय– अष्टांगहृदय में 06 स्थान हैं, जिसमें 120 अध्याय संकलित हैं। उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि यह ग्रन्थ शरीररूपी हृदय के समान है।

आयुर्वेदिक से सम्बन्धित ग्रन्थ को वाग्भट ने विलकुल काव्यमयी भाषा में उपनिषद्ध किया है, जिससे पाठ्क शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य का भी लाभ प्राप्त कर सकें। उन्होंने अष्टांग संग्रह में काव्य"ाास्त्रीय प्रतिमानों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। इस कारण यदि इन्हें वैद्यकवि कहा जाय तो कोई अतिषयोक्ति नहीं होगी।

- सूत्रस्थान
- शारीरस्थान
- निदानस्थान
- चिकित्सास्थान
- कल्पस्थान
- उत्तरस्थान

9.10 आयुर्वेद को वाग्भट को देन

वाग्भट ने आयुर्वेद के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का संकलन कर जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया, जो अत्यन्त ज्ञानवर्धक है। आयुर्वेद के रहस्यों को सरल व संक्षिप्त रूप में उपलब्ध कराया।

9.11 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– सुश्रुतसंहिता के रचनाकार हैं –

(a) चरक (b) वाग्भट (c) सुश्रुत (d) नन्दिकेश्वर

2– सुश्रुत ने आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की –

(a) चरक (b) वाग्भट (c) दिवोदास धन्वन्तरि

3– सुश्रुतसंहिता में कितने स्थान हैं –

(a) 02 (b) 03 (c) 05 (d) 08

4– अष्टांगसंग्रह के रचनाकार हैं –

(a) चरक (b) वाग्भट (c) सुश्रुत (d) शालिहोत्र

5– अष्टांगसंग्रह में कितने स्थान हैं –

(a) 05 (b) 06 (c) 04 (d) 07

6– अष्टांगहृदय के रचनाकार हैं –

(a) चरक (b) नागार्जुन (c) वाग्भट (d) सुश्रुत

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1– सुश्रुतसंहिता में संक्षेप में उल्लेख कीजिये ?

2– वाग्भट का जीवन–परिचय का उल्लेख कीजिये ?

विस्तृत–उत्तरीय प्रश्न

1– वाग्भट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, तथा कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

2– सुश्रुत का कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये ?

MAST-111

संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 4

अर्थशास्त्र एवं संगीतशास्त्र (भाग 2)

इकाई –10 आचार्य कौटिल्य : आचार्य कौटिल्य का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, जीवन परिचय, कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय, अर्थशास्त्र **129–139**

इकाई –11 आचार्य शार्ङ्गदेव : शार्ङ्गदेव का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, शार्ङ्गदेव का कर्तृत्व, संगीतरत्नाकर का प्रतिपाद्य विषय, संगीतशास्त्र को शार्ङ्गदेव की देन **140–146**

mÙkj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;
mÙkj izns'k iz;kxjkt

ijke'kZ lfefr	
izks0 lhek flag	dqyifr] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
duZy fou; dqekj	dqylfpo] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izks0 lR;iky frokjh	funs'kd] ekuofodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0]iz;kxjkt
fo'k"kK lfefr	
izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd] ekuofodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt
izks0 gfjnÙk 'kekZ	vkpk;Z ,oa iwoZ v/;{k] lLd`r foHkkx b0fo0fo] iz;kxjkt
izks0 dk'khukFk U;k.Mh;	vkpk;Z ,oa v/;{k] lkfgR; lLd`r foHkkx dkfgfofo] okjk.klh
izks0 mes'k izlkn flag	vkpk;]] lLd`r foHkkx dk'kh fgfofo] okjk.klh
MkW- fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr ¼lfonk½
lEiknd@ifjekid	
izks0 foukn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd ekuofodh fo|k'kk[kk m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
ys[kd	
Mk0 x.ks'k Hkkxor	lgk;d vkpk;Z] lLd`r foHkkx jktdh; egkfo|ky;] xqIrdk'kh] #nziz;kx] mÙkjk[k.M
leUo;d	
Mk0 fLerk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt

2023 ¼eqfnzr½

© m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt&2023

ISBN- 978-81-19530-76-2

mRrj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt lokZf/kdkj lqjf{kr A bl ikB~;lkexzh dk dksbZ Hkh va'k mRrj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky; dh fyf[kr vuqefr fy, fcuk fefe;kxzkQ vFkok fdlh vU; lk/ku ls iqu% izLrqr djus dh vuqefr ugha gSA
ukV % ikB; lkexzh esa eqfnzr lkexzh ds fopkjksa ,oa vkdMksa vkfn ds izfr fo'ofo|ky; mÙkjnk;h ugha gSA

izdk'ku % mÙkj izns'k jktf"kZ V.Mu fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izdk'kd % dqylfpo] duZy fou; dqekj m0iz0 jktf"kZ V.Mu fo'ofo|ky;] iz;kxjkt &2024
eqnzd%& pUnzdyk ;wfuolZy ikboV fyfeVsM] 42@7 tokgjyky ug: jksM] iz;kxjkt

CC BY SA

खण्ड – 4

अर्थशास्त्र एवं संगीतशास्त्र (भाग –2)

प्रस्तावना :

भारतीय–संस्कृति पुरुषार्थ–चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सम्पोषिका है। भारतीय–ज्ञानपरम्परा में अर्थशास्त्र में राजनीति, धर्मनीति तथा अन्य नीतियाँ समाविष्ट हैं। भारत में अर्थशास्त्र की परम्परा प्राचीन रही है। इसी परम्परा में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र महत्त्वपूर्ण है।
भारतीय–ज्ञानपरम्परा में समस्त शास्त्रों का मूल 'वेद' माना जाता है। संगीतशास्त्र की उत्पत्ति सामवेद से हुयी है। जिस शास्त्र में संगीत और उसके तत्त्वों का विवेचन किया गया है, वह संगीतशास्त्र है। संगीत के आदि प्रवर्तक शिव हैं। यह संगीत परम्परा शिव से होते हुए पार्वती, गौरी, नन्दिकेश्वर, नारद से होते हुए शार्ङ्गदेव, कुम्भकर्ण महाराज आदि संगीताचार्यों द्वारा उत्तरोत्तर विकासशील होती रही।

प्रकृत खण्ड में शिक्षार्थी आचार्य कौटिल्य एवं शार्ङ्गदेव के व्यक्तित्व–कर्तृत्व का अध्ययन करेंगे।

इकाई –10 आचार्य कौटिल्य

इकाई की रूपरेखा

10.1– इकाई परिचय

10.2– उद्देश्य

10.3– आचार्य कौटिल्य का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

10.4– जीवन परिचय

10.5– कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

10.5.1 अर्थ”ाास्त्र

10.5.1.1 प्रथम अधिकरण

10.5.1.2 द्वितीय अधिकरण

10.5.1.3 तृतीय अधिकरण

10.5.1.4 चतुर्थ अधिकरण

10.5.1.5 पंचम अधिकरण

10.5.1.6 ‘ाष्ठा अधिकरण

10.5.1.7 सप्तम अधिकरण

10.5.1.8 अष्टम अधिकरण

10.5.1.9 नवम अधिकरण

10.5.1.10 द”ाम अधिकरण

10.5.1.11 एकाद”ा अधिकरण

10.5.1.12 द्वाद”ा अधिकरण

10.5.1.13 त्रयोद”ा अधिकरण

10.5.1.14 चतुर्द”ा अधिकरण

10.5.1.15 पंचद”ा अधिकरण

10.6– बोध प्र”न

10.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में निर्धारित 'संस्कृतशास्त्र एवं शास्त्रकार' (MAST-III) नामक प्र"न–पत्र की दसवीं इकाई खण्ड–3 अर्थ"ास्त्र एवं संगीत"ास्त्र के अन्तर्गत आचार्य कौटिल्य से सम्बन्धित हैं। इस इकाई में इनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन किया जायेगा।

10.2 उद्देश्य :– इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी–

- कौटिल्य के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- कौटिल्य की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कौटिलीय अर्थशास्त्र के विषय में जान सकेंगे।

10.3 आचार्य कौटिल्य का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

कौटिल्य के जन्म–समय में इतिहासकारों में मत वैविध्य है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का लेखक, जन्म–स्थान आदि के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती। ग्रन्थ के अन्त में उल्लिखित है–

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।

अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्।।

अर्थात् इस ग्रन्थ को उसने लिखा है, जिसने शास्त्र, शस्त्र तथा नन्द राजा द्वारा शासित पृथ्वी का एक साथ उद्धार किया। आचार्य के जन्मसमय के विषय में निम्न साक्ष्य दिए जा सकते हैं–

- विष्णुपुराण में उल्लेख है (नन्द राजा के नाश के सम्बन्ध में) महापदत्र तथा उसके 9 लड़के 100 साल तक राज्य करेंगे और उन नन्दों का कौटिल्य नामक ब्राह्मण नाश करेगा। उनके न रहने पर मौर्य पृथ्वी का उपभोग करेंगे। कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त को राज्य पर बैठायेगा। उसका पुत्र बिन्दुसार होगा और बिन्दुसार का पुत्र अशोकवर्धन होगा। इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य 321 ईसवी पूर्व तथा अशोकवर्धन का समय 296 ईसवी पूर्व रहा। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य का यही समय है।
- दण्डी ने भी अर्थशास्त्र के लेखक का नाम विष्णुगुप्त उल्लिखित किया है।
- पंचतन्त्र के लेखक ने लिखा है– "ततो धर्म्यशास्त्राणि मन्वादीनि,

अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि, कायशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि"। अर्थात् धर्मशास्त्र से तात्पर्य मन्वादि, अर्थशास्त्र से चाणक्यादि और कामशास्त्र से तात्पर्य वात्स्यायनादि से है।

- मल्लिनाथ ने भी रघुवंश के कुछ श्लोकों की व्याख्या में कौटिल्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है– कालिदास ने शिकार के पक्ष में उन्हीं युक्तियों को दिया है जो कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में दी हैं।
- इससे स्पष्ट होता है कि मल्लिनाथ के समय तक अर्थशास्त्र प्रचलित था। कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त एक ही व्यक्ति हैं, और यह वही मनुष्य है जिसने नन्दों को नष्ट कर चन्द्रगुप्त को राज्य पर बैठाया। हेमचन्द्र यादव की वैजयन्ती तथा भोजराज की मालिका से यह ज्ञात होता है कि कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त का तीसरा नाम चाणक्य है।
- नन्दिसूत्र में उल्लेख है कि चाणक्य ने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा है। मेगस्थनीज ने भारत की जो सामाजिक और राजनीतिक दशा का वर्णन किया है, वह कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलती है।
- इनके समय को निर्धारित करने के लिए डा.त्रिपाठी ने 3 विद्वानों का उल्लेख किया है–
- प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार ने कौटिल्य अर्थशास्त्र की प्रस्तावना में बताया है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के सैकड़ों शब्दों में एवं उसकी लेखनशैली पर कल्पसूत्रों की शब्दावली एवं रचना शैली का प्रभाव दिखता है।
- वाचस्पति गैरोला के अनुसार वृहत् हिन्दू जाति के राजनीतिशास्त्र विषयक ग्रन्थ का निर्माण लगभग 650 ईसवी पूर्व में हो गया था।

निष्कर्षतः अर्थशास्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री चाणक्य ने की है। उसी का अन्य नाम कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त है। इतिहासकारों के अनुसार अर्थशास्त्र का रचनाकाल 350 ईसवी पूर्व माना है। यही समय अर्थात् ईसा पूर्व चौथी शताब्दी कौटिल्य का निर्धारित होता है।

10.4 जीवन–परिचय

भारतीय इतिहास में मगध साम्राज्य में नन्द वंश के पश्चात् मौर्य साम्राज्य का शुभारम्भ होता है। उसी समय आचार्य कौटिल्य का नाम सामने आता है। उनका अन्य नाम चाणक्य भी है। चणक का पुत्र होने से इन्हें चाणक्य कहा जाता है। राजनीतिज्ञ होने से इन्हें कौटिल्य नाम से भी अभिहित किया गया। वस्तुतः

इनके ये नाम उनके माता–पिता द्वारा न रखे होकर उनके कार्यों से प्रचलित हुए होंगे। कौटिल्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था।

कामन्दककृत नीतिशास्त्र जिसकी रचना 400 ई. के लगभग हुई थी, में आचार्य कामन्दक ने उल्लेख किया कि अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य हैं। ये वही कौटिल्य हैं जिन्होंने नन्द वंश का नाशकर मौर्यवंश को प्रतिष्ठित किया। इन्हीं कौटिल्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था। उपर्युक्त नाम प्राचीन सभी ग्रन्थों में मिलता है। कौटिल्य, चाणक्य तथा विष्णुगुप्त ये तीनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त था। चणक के पुत्र होने से चाणक्य कहलाए तथा राजनीति में निपुण होने से यह कौटिल्य कहलाए। कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री, गुरु तथा राज्य के संस्थापक व संरक्षक थे।

कौटिल्य बड़ा स्वाभिमानी एवं राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति था। एक कथा के अनुसार मगध के राजा महानन्द ने श्राद्ध के अवसर पर कौटिल्य को अपमानित किया था। अन्य तथ्यों से ज्ञात होता है कि घनानन्द की प्रजा विरोधी नीतियों के कारण चाणक्य के पिता चणक द्वारा विरोध किए जाने पर उन्हें कारागार में बन्दी बनाया गया तथा उनके परिवार को राज्य से निष्कासित कर दिया। फिर भी चाणक्य ने राष्ट्रहित में घनानन्द से सीमावर्ती क्षेत्रों में बाहरी आक्रान्ताओं से सतर्क रहने हेतु सैनिक सहायता मांगी। किन्तु घनानन्द ने उनको अपमानित कर राजमहल से निकाल दिया। तत्पश्चात् कौटिल्य ने अपनी शिखा खोलकर यह प्रतिज्ञा की, कि जब तक वह नन्दवंश का नाश नहीं कर देगा तब तक अपनी शिखा नहीं बान्धेगा। तत्पश्चात् उसने नन्द साम्राज्य से ही निष्कासित नन्द के ही एक परिवार चन्द्रगुप्त से मित्रता कर ली। दोनों ने मित्रता करके सेना एकत्रित कर महानन्द का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राजगद्दी पर आसीन कराया, और मौर्य साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से व्यावहारिक राजनीति में प्रवेश किया।

मगध के प्रधानमन्त्री होने पर भी कौटिल्य का जीवन सादगी से परिपूर्ण था। वे सादा जीवन और उच्च विचार के समर्थक थे। इनका निवास नगर से बाहर नदी के तट पर स्थित पर्णकुटी में था। उस झोपड़ी की दीवारों पर गोबर के उपले थोपे रहते थे। जब चीनी यात्री फाह्यान ने उनसे पूछा कि इतने बड़े देश का प्रधानमन्त्री ऐसी साधारण झोपड़ी में रहता है, तब कौटिल्य ने उत्तर दिया कि जिस राज्य का प्रधानमन्त्री झोपड़ी में रहता है वहाँ की प्रजा भव्यभवनों में निवास करती है, और जहाँ राज्य का प्रधानमन्त्री राजमहलों में रहता हो, वहाँ की प्रजा को झोपड़ियों में रहना पड़ता है।

उनके अनुसार राजा या मन्त्री अपने चरित्र और उच्चादर्शों द्वारा प्रजा के

सामने एक प्रतिमान स्थापित करते हैं।

कौटिल्य के विषय में दन्तकथा प्रसिद्ध है कि जब यूनान का राजदूत मेगस्थनीज मगध साम्राज्य आया तब वह चाणक्य से मिलने उनकी पर्णकुटी पर गया। उसने देखा कि उनकी सुरक्षा में कोई तैनात नहीं था। कौटिल्य के सामने दो दीपक थे और वे लेखन कार्य में व्यस्त थे। मेगस्थनीज के आने पर उन्होंने जलता हुआ दीपक बुझा दिया तथा दूसरा दीपक जला दिया। मेगस्थनीज द्वारा इसका कारण पूछने पर कौटिल्य ने कहा कि जब मैं राजकीय कार्य कर रहा था तब यह दीपक राजकीय खर्चे से जल रहा था, अब मैं व्यक्तिगत कार्य कर रहा हूँ अतः व्यक्तिगत धन से अर्जित तेल का दीपक जला रहा हूँ।

एक घटना से कौटिल्य की राजनीतिज्ञता का उदाहरण प्राप्त होता है। कौटिल्य को यह डर रहता था कि कहीं चन्द्रगुप्त को कोई विष देकर मार ना डाले, इसलिए वह स्वयं चन्द्रगुप्त के भजन में थोड़ा–थोड़ा विष खिलाकर विष खाने का अभ्यस्त बना रहे थे। किन्तु एक दिन उनकी राजमहिषी भी चन्द्रगुप्त के साथ विष में मिला भोजन खा गयी। जिससे उसकी मृत्यु हो गयी, और उसके गर्भ में स्थित बच्चा जीवित निकाल दिया गया। विष की एक बून्द उसके सिर में गिर गयी, जिससे उसका नाम बिन्दुसार पड़ गया। इसीलिए समाज ने विष्णुगुप्त का नाम चाणक्य व कौटिल्य रखा।

कौटिल्य कुरूप चेहरे वाला, क्रुद्ध स्वभाव वाला ब्राह्मण था। उसमें राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति आदि से लेकर व्यक्तिगत जीवन की व्यावहारिकता विद्यमान थी। कौटिल्य प्रकाण्ड विद्वान्, गम्भीर चिन्तक तथा चतुर राजनीतिज्ञ था। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विद्वानों का मानना है कि कौटिल्य का जन्म पंजाब के चणक क्षेत्र में हुआ था। जबकि कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था। कुछ लोग उन्हें कांचीपुरम के रहने वाले द्रविड़ ब्राह्मण दक्षिण भारतीय निषाद मानते हैं। कुछ लोगों के मत में वे केरल के निवासी थे तथा वाराणसी आए। कुछ विद्वान् उन्हें तक्षशिला का निवासी मानते हैं। कौटिल्य के जन्मस्थान के सम्बन्ध में मतभेद हैं तथापि उनका जन्मस्थान तक्षशिला मानना उचित होगा।

10.5 कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय

कौटिल्यगोत्रीय ऋषि चणक के पुत्र विष्णुगुप्त ने भारत के राजाओं को राजनीति सिखाने के लिए अर्थशास्त्र, लघुचाणक्य, वृद्धचाणक्य, चाणक्यनीति, चाणक्यराजनीतिशास्त्र आदि ग्रन्थों की रचना की थी।

10.5.1 अर्थशास्त्र– कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र प्रमुखतः राजनीति से सम्बन्धित ग्रन्थ है, जिसमें राजा व राज्य के बारे में विस्तृत वर्णन किया है। इसमें राजव्यवस्था, कृषि, न्याय एवं राजनीति आदि के विविध पक्षों पर चर्चा की गयी है। इसे राज्य प्रबन्धन विषयक ग्रन्थ कहा जा सकता है, यह उपदेशात्मक तथा परमर्शात्मक शैली में निबद्ध है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 प्रकरण तथा 6000 श्लोक हैं।

अर्थशास्त्र के मंगलाचरण में कौटिल्य शुक्राचार्य व बृहस्पति को नमस्कार करते हैं तथा कहते हैं कि पृथिवी की प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए उनसे पूर्वाचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थ लिखे उन सबका साररूप प्रकृत अर्थशास्त्र की रचना की गयी है–

ॐ नमः शुक्र बृहस्पतिभ्याम्

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः

प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।

10.5.1.1 प्रथम अधिकरण– विनयाधिकार (राजवृत्तिनिरूपण)

विद्या विषयक विचार, वृद्ध संयोग, इन्द्रियजय, अमात्योत्पत्ति, मन्त्री तथा पुरोहित की नियुक्ति, गुप्तचरों की नियुक्ति, अपने देश में कृत्य तथा अकृत्य पक्ष की सुरक्षा, शत्रु देश में कृत्य तथा अकृत्य पक्ष के लोगों को वश में करना, गुप्त विचार तथा मन्त्रणा, राजकुमार की रक्षा, बन्धन में पड़े राजकुमार का कर्तव्य, राजा का प्रबन्ध तथा कर्तव्य, अन्तःपुर का प्रबन्ध तथा आत्मरक्षा।

10.5.1.2 द्वितीय अधिकरण– अध्यक्ष प्रचार

जनपद निवेश, भूमि का विभाग, दुर्ग का विधान, दुर्ग निवेश, सन्निधाता के कर्तव्य, समाहर्ता द्वारा राजस्व एकत्रित करना, गाणनिक के अक्षपटल में काम, गबन किए धन का प्राप्त करना, उपयुक्त परीक्षा, शासनाधिकार, कोश में ग्रहण करने योग्य रत्नों की परीक्षा, खनिज पदार्थों के व्यवसाय का संचालन, स्वर्णाध्यक्ष का कार्य, विशिखा में सुनारों का काम, कोषागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, आयुधागाराध्यक्ष, तोलमाप, देश तथा काल का मान, शुल्काध्यक्ष, शुल्क व्यवहार, सूत्राध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष, नावाध्यक्ष, गो–अध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, हस्तिप्रचार, रथाध्यक्ष, पत्याध्यक्ष तथा सेनापति का काम, मुद्राध्यक्ष तथा विवीताध्यक्ष, समाहर्ता का प्रबन्ध तथा खुफिया पुलिस का प्रयोग तथा नागरक का कार्य।

10.5.1.3 तृतीय अधिकरण– धर्मस्थीय (न्याय का निरूपण)

व्यवहार का स्थापन तथा विवाद का निर्णय, विवाह, विवाहितों के सम्बन्ध में नियम, विवाह विषयक नियम, दायविभाग, हिस्सों को बाँटना, पुत्रविभाग, गृह–वास्तुक, वास्तुविक्रय, चारागाह खेत तथा काम का नुकसान, ऋणदान, औपनिधिक, दास–कल्प, श्रम तथा पूंजी का विनियोग, विक्रय, क्रय तथा जाकड़ का प्रबन्ध, दिए हुए धन का ग्रहण, अस्वामिक धन का विक्रय तथा पदार्थों पर स्वत्व, साहस, वाक–पारुष्य, दण्ड–पारुष्य, द्यूत समाह्वय तथा प्रकीर्णक।

10.5.1.4 चतुर्थ अधिकरण– कण्टकशोधन

कारीगरों की रक्षा, व्यापारियों की रक्षा, दैवी विपत्तियों का उपाय, गुडाजीवियों की रक्षा, सिद्ध के वेशभूषा में बदमाशों का पकड़ना, शंक–रूप तथा कर्म के अनुसार, आशुमृतकपरीक्षा, वाक्य कर्मानुयोग, राजकीय विभागों का संरक्षण, एक अंग काटने का दण्ड, शुद्ध तथा चित्रदण्ड, कुंवारी कन्या से सम्भोग करने का दण्ड तथा अतिचार का दण्ड।

10.5.1.5 पंचम अधिकरण– योगवृत्त

दण्ड–विधान, कोष–संग्रह, भृत्यभरणीय, राज्यसेवकों का कर्तव्य, समय का ध्यान रखना, राज्य का प्रबन्ध तथा एकैश्वर्य।

10.5.1.6 षष्ठ अधिकरण– प्रकृतियों का निरूपण प्रकृति के गुण, शान्ति तथा उद्योग

10.5.1.7 सप्तम अधिकरण– षड्गुणों का निरूपण

षाड्गुण्य का उद्देश्य, क्षय, स्थान तथा वृद्धि, संश्रयवृत्ति, समहीन तथा न्याय के गुण और हीन की सन्धि, आसन तथा प्रयान, युद्ध विषयक विचार, साथ मिलकर चढ़ायी तथा सन्धियाँ, द्वैधीभाव से सम्बन्ध सन्धि तथा विक्रम यातव्य तथा अनुग्राह्य मित्र का कर्तव्य, मित्र–सन्धि तथा हिरण्य–सन्धि, भूमि–सन्धि, औपनिवेशिक–सन्धि, कर्म –सन्धि, पार्ष्णिगृह चिन्ता, हीन शक्रि–पूरण, प्रबल शत्रु के साथ व्यवहार तथा विजित शत्रु का चरित्र, पराजित राजा का व्यवहार, सन्धि करना तथा तोड़ना, मध्यम तथा उदासीन मण्डल के कार्य।

10.5.1.8 अष्टम अधिकरण– व्यसनों का निरूपण

प्रकृतियों के व्यसन, राजा तथा राज्य विषयक व्यसनों की चिन्ता, पुरुषव्यसनवर्ग, पीडनवर्ग, स्तम्भवर्ग, कोषसंगवर्ग, बलव्यसनवर्ग, मित्रव्यसनवर्ग।

10.5.1.9 नवम अधिकरण– आक्रमण का निरूपण

शक्ति, देशकाल तथा यात्राकाल, सेना का इकट्ठा तथा तैयार करना और दूसरे सेना के काम, पश्चात् कोष चिन्ता और बाह्याभ्यन्तर प्रकृति कोप का प्रतिकार, क्षय व्यय, लाभ का विमर्श, बाह्य तथा आभ्यन्तर आपत्तियाँ, राज्य द्रोहियों तथा शत्रुओं के साथी, अर्थानर्थ संशय तथा आपत्तियाँ, उन आपत्तियों के प्रतिकारों के उपायों से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ।

10.5.1.10 दशम अधिकरण–संग्राम का निरूपण

छावनी का निर्माण, छावनी का प्रयाण, बलव्यसन, अवस्कन्द काल तथा सैनिक संरक्षण, कूटयुद्ध, स्वसैन्योत्साहन तथा स्वबल तथा अन्य बल का प्रयोग, युद्धभूमि, पदाति, अश्व, रथ, हस्ति आदि के नाम, व्यूहविभाग, बलविभाग, चतुरंग सेना द्वारा युद्ध, दण्ड भाग मण्डल, असंहत सम्बन्धी व्यूह और प्रतिव्यूह का स्थापन।

10.5.1.11 एकादश अधिकरण– संघवृत्त भेदोपादान, उपांशु दण्ड।

10.5.1.12 द्वादश अधिकरण– आबलीयस का निरूपण

दूत के काम, मन्त्रयुद्ध, सेनापतियों का घात, राजमण्डल की सहायता, शस्त्र अग्नि तथा रथ का प्रयोग, वीवध आसार तथा प्रसार का वध, योगाति सन्धान दण्डाति सन्धान तथा एकविजय।

10.5.1.13 त्रयोदश अधिकरण– दुर्गप्राप्ति का निरूपण

उपजाप, योगवर्मन, खुफिया पुलिस का प्रयोग, किले का गिरना, शत्रु का नाश, विजित प्रदेश में शान्ति स्थापित करना।

10.5.1.14 चतुर्दश अधिकरण– औपनिषदिक निरूपण

शत्रुवर्ग के प्रयोग, प्रलम्भन योग, शत्रु द्वारा अपनी सेना पर किए गए घातक प्रयोगों का प्रतीकार।

10.5.1.15 पंचदश अधिकरण– तन्त्रयुक्ति का निरूपण तन्त्र युक्तिया।

भारतीय दृष्टिकोण में अर्थ से तात्पर्य सम्पत्ति है। पुरुषार्थ–चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में अर्थ मोक्ष का साधन है। जीवन के सभी क्रियाव्यापार अर्थ पर ही आधारित है। अपने पूर्व अर्थशास्त्रों की चर्चा करते हुए कौटिल्य ने कहा कि अपने अर्थशास्त्र में कई सन्दर्भों में उसने आचार्य बृहस्पति, भारद्वाज, शुक्राचार्य, पिशु आदि का उल्लेख किया है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र राजनीतिक सिद्धान्तों की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। प्राचीन समय में अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में होता था। इसमें राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कानून आदि पक्षों का अध्ययन होता था। कौटिल्य के अनुसार राजनीतिशास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र है और आन्वीक्षिकी (दर्शन), त्रयी (वेद) तथा वार्ता एवं कानून आदि उसकी शाखाएं हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र की रक्षा राजनीति या दण्ड व्यवस्था से होती है। उस समय अर्थशास्त्र को राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता था।

अर्थशास्त्र का परिचय देते हुए कहा है कि– "मनुष्याणां वृत्तिरर्थ" अर्थात् मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं– "तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थः" अर्थात् मनुष्यों से युक्त भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है। अतः अर्थशास्त्र राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, विधिव्यवस्था, समाज–व्यवस्था और धर्म व्यवस्था से सम्बन्धित सिद्धान्तों का शास्त्र है। अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम विद्याविषयक विचार करते हुए चार प्रकार की विद्याओं का उल्लेख किया है –

"आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः"

अर्थात् आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इस प्रकार 4 विद्यायें हैं। आन्वीक्षिकी को कौटिल्य धर्म तथा अधर्म के ज्ञान में बताते हैं। साम, ऋक् तथा यजु इन तीनों वेदों का समन्वित नाम त्रयी है। इसमें निरूपित धर्म, चतुर्वर्ण, कर्म और चार आश्रम योग्य किए जाने वाले कर्तव्यों का विवरण है। इन तीनों विद्याओं की सुख समृद्धि का नियामक दण्ड है। दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति है। यह दण्डनीति ही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है, तथा प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है। कौटिल्य का मानना है कि इस लोक को समुचित मार्ग पर चलाने वाले को सदा ही दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए–

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।

स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु।।

अर्थात् राजा की दण्डव्यवस्था से रक्षित चतुर्वर्ण चार आश्रम, सम्पूर्ण संसार अपने–अपने धर्मकार्यों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी–अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

कौटिल्य के राजनीतिक सिद्धान्तों में राज्य की उत्पत्ति के बारे में कहा है कि राज्य से पूर्व समाज में अराजकता जिसकी लाठी उसकी भैंस की तरह स्थिति

थी। लोगों ने अपने जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए मनु को राजा बनाया और इसके बदले छठवाँ हिस्सा कर के रूप में देना निर्धारित किया। उसके अनुसार राजा जनकल्याण करेगा। राजा द्वारा उनकी सुरक्षा, कल्याण आदि सुनिश्चित किए जाने पर ही प्रजा कर को कोष में जमा करेंगे। कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति में जनस्वीकृति का विचार दिया।

राज्य के स्वरूप में कौटिल्य का 'सप्तांग सिद्धान्त' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसके अनुसार राज्य के सात अंग स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र हैं। इनकी योग्यता, विशिष्टता और प्रभावी क्रियान्वयन से ही राज्य का उत्कर्ष होता है।

राज्य के प्रशासन हेतु राजा को प्रधान तथा उसके अट्ठारह सहायकों का वर्णन करता है। कानून एवं न्याय के विषय में कौटिल्य ने विशेष बल दिया। उसके कानून का आधार धर्म है।

अर्थशास्त्र और उसके जीवन सम्बन्धी ध्येयों से स्पष्ट होता है कि कौटिल्य एक ऐसे विराट् साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था, जिसकी शासन सत्ता निरंकुश हो और जिसके अपार बल और वैभव के समक्ष किसी अन्य का सिर उठाने का साहस न रहे। उसकी नीतियों में लोक कल्याण की भावना भी निहित थी। उसकी निरंकुश नीति में प्रजातान्त्रिक विचारों का भी सुन्दर समन्वय था। उसके अनुसार राजा का अपना कोई हित या सुख नहीं होना चाहिए–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है, राजा का अपना प्रिय कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।

10.6 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– कौटिल्य का अन्य नाम है –

(a) चन्द्रगुप्त (b) मोहनगुप्त (c) चाणक्य (d) सोमदेव

2– अर्थशास्त्र के रचनाकार हैं –

(a) कौटिल्य (b) चन्द्रगुप्त (c) बिन्दुसार (d) शार्ङ्गदेव

3– अर्थशास्त्र में कितने अधिकरण हैं –

(a) 10 (b) 12 (c) 21 (d) 15

4– कौटिल्य ने राज्य के लिए महत्त्वपूर्ण नीति का उल्लेख किया –

(a) अष्टांग नीति (b) द्वादश नीति

(c) त्रयोदश नीति (d) सप्तांग नीति

5– अर्थशास्त्र में विद्या के प्रकार में निम्न में से कौन सी विद्या सम्मिलित नहीं है –

(a) आन्वीक्षिकी (b) त्रयी (c) दण्डनीति (d) भाषा

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– कौटिल्य का जन्म–समय एवं जीवन–परिचय का उल्लेख कीजिये ?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य कौटिल्य के कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये ?

इकाई –11 आचार्य शार्ङ्गदेव

इकाई की रूपरेखा

11.1– इकाई–परिचय

11.2– उद्देश्य

11.3– शार्ङ्गदेव का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

11.4– शार्ङ्गदेव का कर्तृत्व

11.5– संगीतरत्नाकर का प्रतिपाद्य विषय

11.6– संगीतशास्त्र को शार्ङ्गदेव की देन

11.7– बोध प्र”न

11.1 इकाई परिचय

संगीत”ाास्त्र से सम्बद्ध प्रकृत इकाई में संगीताचार्य शार्ङ्गदेव के व्यक्तित्व–कर्तृत्व के विषय में अध्ययन किया जायेगा।

11.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- आचार्य शार्ङ्गदेव के जन्म–समय से अवगत हो सकेंगे।
- आचार्य शार्ङ्गदेव के जन्म–स्थान के विषय में जान सकेंगे।
- संगीतरत्नाकर के प्रतिपाद्य विषय को समझ सकेंगे।

11.3 शार्ङ्गदेव का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

शार्ङ्गदेव प्रसिद्ध भारतीय संगीतज्ञ हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' में अपना परिचय दिया है–

बलमेश्वरदेवो हि यस्य साक्षात्पितामहः।

असौ किं वर्ण्यते ज्ञानवैराग्यैश्वर्यसम्पदा।।

माता नारायणी यस्य पिता लक्ष्मीधरः स्वयं।

शार्ण्डिल्यगोत्रजः सोऽयं साक्षात्संगीतदेवता।।

तमाह कल्लिनाथाय स राजा बहुमानतः।

रत्नाकरं व्याकुरुष्व लक्ष्यलक्षणकोविद।।

अतः स कल्लिनाथार्यो रत्नाकरनिबन्धनम्।।

कलानिधिं निबध्नाति लक्ष्यलक्ष्माविरोधतः।।

मंगलाचरण के पश्चात् आये श्लोकों से ज्ञात होता है कि शार्ङ्गदेव के पूर्वज कश्मीर देश के निवासी थे। किन्हीं कारणों से उनके पितामह भास्कर ने कश्मीर छोड़कर दक्षिण की ओर देवगिरी वर्तमान महाराष्ट्र के दौलताबाद में वहाँ के यादव नरेश भिल्लम के राज्याश्रय में निवास किया। उन्होंने स्वयं कहा है कि–

अस्ति स्वस्तिगृहं वंशः श्रीमत्काश्मीरसम्भवः

ऋषेर्वृषगणाज्जातः कीर्तिक्षालितदिंगमुखः।।

यच्चभिर्धर्मधीयुर्यैवेदसागरपारगैः

यो द्विजेन्द्ररलंचक्रे ब्रह्मभिर्भूगतैरिव।।

तत्राभूद् भास्करप्रख्यो भास्करस्तेजसां निधिः

अलंकतं दक्षिणाशां यश्चक्रे दक्षिणायनम्।।

तस्याभूत्तनयः प्रभूतविनयः श्रीसोढलः प्रौढधी–

र्येन श्रीकरणमवृद्धविभवं भूवल्लभं भिल्लमम्

आराध्याखिललोकशोकशमनी कीर्तिः समासादिता

जैत्रे जैत्रपदं न्यधायि महती श्रीसिंघणे श्रीरपि।।

अर्थात् इनके पूर्वज श्री से युक्त कश्मीर देश में वृषगण नामक गोत्र में उत्पन्न हुये जो यशस्वी, धार्मिक तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों से युक्त था। इसी वंश में भास्कर नामक व्यक्ति का जन्म हुआ, जिन्होंने दक्षिण दिशा में अपना निवास स्थान बनाया। यही भास्कर काश्मीर से दक्षिण में देवगिरी में गए थे। देवगिरि के यादव वंश के शासक विद्याओं, कलाओं, विद्वानों का सम्मान करते थे।

भास्कर के पुत्र सोढल हुये जो अत्यन्त विद्वान् एवं शीलवान थे। सोढल ने राजा भिल्लम को अपनी विद्वता से प्रभावित कर उनके दरबार में स्थान बनाया। अपनी विद्वता से कीर्ति अर्जित कर जैत्र नामक नगर में अपना निवास बनाया। भिल्लम के पश्चात् उसका पुत्र सिंघण राजा बना। इस सिंघण से भी सोढल ने

पर्याप्त सम्मान और सम्पत्ति प्राप्त की। सोढल भिल्लम के राज दरबार में श्रीकरणाग्रणी (महालेखापाल) के पद पर नियुक्त थे।

भिल्लम के पश्चात् उनके पुत्र जैत्रपाल राजा बने। जैत्रपाल के पश्चात् उसके पुत्र सिंगण ने 1210 से 1247 ई. तक शासन किया।

सोढल का पुत्र शार्ङ्गदेव हुआ। शार्ङ्गदेव भी राजा सिंघण के दरबार में श्रीकरणाग्रणी के पद पर नियुक्त हुआ, इसी पद पर रहते हुए उसने संगीतरत्नाकर की रचना की।

11.4 शार्ङ्गदेव का कर्तृत्व

शार्ङ्गदेव द्वारा रचित 'संगीतरत्नाकर' संगीतशास्त्रीय ग्रन्थ है। यह भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों में से है। यह ग्रन्थ हिन्दुस्तानी संगीत तथा कर्नाटक संगीत दोनों द्वारा समादृत है। सात अध्याय से युक्त होने से इसे 'सप्ताध्यायी' भी कहते हैं। भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र के पश्चात् संगीतरत्नाकर ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। सात अध्यायों वाले इस ग्रन्थ में संगीत और नृत्य का विस्तार से वर्णन है।

11.5 संगीतरत्नाकर का प्रतिपाद्य विषय

शार्ङ्गदेव का संगीत से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संगीतरत्नाकर है। अपने ग्रन्थ में शार्ङ्गदेव ने पूर्वाचार्यों का वर्णन किया है, जिसमें सदाशिव, पार्वती, ब्रह्मा, भरत, कश्यप, मतंग, दुर्गाशक्ति, शार्दूल, कोहल, विशाखिल, कम्बल और अश्वतर, वायु, विश्वावसु, रम्भा, अर्जुन, नारद, तुम्बुरु, आंजनेय, मातृगुप्त, नन्दिकेश्वर, स्वाति, गण, बिन्दुराज, क्षेत्रराज, रुद्रट, भोजराज आदि विद्वानों और संगीत विशेषज्ञों के ग्रन्थों का सारभूत यह संगीतरत्नकर ग्रन्थ लिखा है। उनके अनुसार संगीतशास्त्र के इन सभी आचार्यों को ग्रन्थों का अध्ययन सम्भव नहीं है, अतः उन सबके मतों का साररूप इस ग्रन्थ में उल्लिखित किया है।

संगीतरत्नाकर में संगीत के तीनों अंगों गीत, वाद्य और नृत्य का विवेचन है। उन्होंने संगीत का लक्षण किया है–

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।

मार्गो देशीति तद् द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।।

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों को संगीत कहा जाता है। संगीत

का भेद करते हुए इसे दो प्रकार का बताया है –

- मार्ग
- देसी

ब्रह्मा द्वारा निर्मित तथा भरतादि द्वारा प्रायोगिक संगीत को मार्ग कहा जाता है। जबकि क्षेत्रानुसार प्रयुक्त संगीत देशी कहा जाता है।

संगीतरत्नाकर 7 अध्यायों में विभक्त है। अध्यायों का विषय–विभाजन इस प्रकार है–

- स्वरगत–अध्याय
- श्रागविवेक–अध्याय
- प्रकीर्णक–अध्याय
- प्रबन्ध–अध्याय
- ताल–अध्याय
- वाद्य–अध्याय
- नर्तन–अध्याय

1. **स्वरगत अध्याय**– इसमें 8 प्रकरण हैं।

i **पदार्थसंग्रह प्रकरण**– इसमें मंगलाचरण, रचनाकार का परिचय, पूर्व के आचार्यों का स्मरण और सात अध्यायों का संक्षेप में विषय वर्णित है। इस अध्याय में शरीर, नाद, स्थान, श्रुति, सात शुद्ध स्वर, और पांच विकृत स्वरों का उल्लेख है। इस प्रकार कुल 12 स्वरों का उल्लेख है। कुल, जाति, वर्ण, द्वीप, ऋषि, देवता, छन्द, विनियोग, श्रुति, जाति, ग्राम, मूर्च्छना, शुद्ध एवं कूटतान, प्रस्तार, खण्डमेरु, नष्ट, उद्दिष्ट, स्वरसाधारण, जातिसाधारण, काकली एवं अन्तर का प्रयोग, वर्णलक्षण, 63 अलंकार, जातियों के ग्रह एवं अंश आदि का उल्लेख किया गया है।

ii. दूसरे प्रकरण में पिण्डोत्पत्ति का वर्णन है। इसमें जीव के गर्भ से लेकर जन्म तक की अवस्थाओं और शारीरिक रचना का निरूपण है। इसमें पिण्डस्वरुप, सृष्टिक्रम मनुष्य देह का वर्णन, भावभेद, इन्द्रिय भेद, गुण भेद, देहभेद, अंग–प्रत्ययों का वर्णन है।

iii. तीसरे प्रकरण में नादस्थान का वर्णन है। इसके अन्तर्गत नाद, स्थान, श्रुति,

स्वर, जाति, कुल, देवता, ऋषि, छन्द तथा रस का वर्णन है। नाद दो प्रकार का होता है– आहत और अनाहत।

iv. **चतुर्थ प्रकरण** में ग्राम, मूर्च्छना, क्रमतान प्रकरण का उल्लेख है। स्वर समूह को ग्राम कहा जाता है। ग्राम के दो भेद होते हैं– षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम। स्वरों का क्रम से आरोहण एवं अवरोहण करना मूर्च्छना कहलाता है। मूर्च्छनाओं से तानों का निर्माण होता है।

v. **पांचवें साधारण** प्रकरण में स्वरसाधारण की प्रक्रिया का विवेचन है। इस प्रक्रिया से प्राप्त होने वाले विकृत स्वरों का वर्णन किया गया है। साधारण के दो प्रकार होते हैं– स्वर साधारण, जाति साधारण। स्वर साधारण चार प्रकार का होता है–

- काकली साधारण
- अन्तर साधारण
- षड्ज साधारण
- मध्यम साधारण

vi. **छठे प्रकरण** वर्णालंकार में वर्ण और अलंकार का विवेचन है। दानक्रिया को वर्ण कहा जाता है, जो चार प्रकार का होता है–

- स्थायी
- आरोही
- अवरोही
- संचारीय

विशिष्ट वर्णन सन्दर्भ को अलंकार माना जाता है। यहाँ 63 अलंकारों का वर्णन है।

vii. **सातवें प्रकरण** में जाति का लक्षण किया गया है। इसमें 18 जातियों का लक्षण और उदाहरण गीत भी दिया गया है।

viii. **आठवें गीतिप्रकरण** में कपाल तथा कम्बलगान का विवेचन है। कपालों के पद, पदाश्रित गीति, गीति **के** प्रकार और तालाश्रित गीति का लक्षण विवेचित है।

2. राग विवेकाध्याय

इस अध्याय में रागों का लक्षण, ग्राम वर्ग के ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा विभाषा और अन्तर भाषा का वर्णन है। इसी अध्याय में रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा पांग रागों का विवेचन है।

3. प्रकीर्णक अध्याय

इस अध्याय में उन विषयों का संकलन है जो किसी अन्य अध्याय के अन्तर्गत नहीं आते। इस अध्याय में वाग्गेयकार, गायकभेद, शब्दभेद, शारीर लक्षण, गमक आदि विषय हैं।

4. प्रबन्धाध्याय

इस अध्याय में नाट्यभिन्न संगीत रचनाओं का विवेचन है। इसमें गीत का लक्षण, गीत के गुण दोष, गान्धर्व गान, प्रबन्ध, प्रबन्ध के तत्त्व तथा प्रत्येक प्रबन्ध के लक्षणों की चर्चा की गयी है।

5. तालाध्याय

तालाध्याय के अन्तर्गत ताल, ताल के तत्त्व, मार्ग ताल, गीतक, देशीताल और ताल प्रत्ययों का निरूपण किया गया है।

6. वाद्याध्याय

इसमें वाद्य, वाद्य के चार प्रकार तत, अवनद्ध, घन, सुषिर, और वादनशैली आदि का विवेचन है।

7. नर्तनाध्याय

इसमें नृत्त, नृत्त के तत्त्व, नृत्तविद्याओं, नवरस और नृत्तसम्बन्धी अन्य विषयों का विवेचन किया गया है।

11.6 संगीतशास्त्र को शार्ङ्गदेव की देन

संगीतरत्नाकर भारतीय संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें शार्ङ्गदेव ने संगीत के सभी अंगो का विस्तृत विवेचन किया है। परवर्ती शास्त्रकारों के लिए यह अत्यन्त प्रभावकारी और प्रेरणादायक रहा है। संस्कृत में रचित यह ग्रन्थ विशुद्ध पाठ वाला अखण्डित प्राप्त होता है। परवर्ती ग्रन्थकारों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि तथा प्रमाण के लिए संगीतरत्नाकर का सहारा लिया है। शार्ङ्गदेव ने प्राचीन संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों के सिद्धान्तों का साररूप में विवेचन किया। प्राचीन संगीत शास्त्र ग्रन्थों और उनके सिद्धान्तों को समझने में संगीतरत्नाकर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ में संगीत के सभी तत्त्वों का विवेचन किया

है, जो परवर्तीशास्त्रकारों के लिए पथ प्रदर्शक बना। यद्यपि यह लक्षण ग्रन्थ है, तथापि इसमें भाषा की सुन्दरता, अलंकार–विन्यास दर्शनीय है।

11.7 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– संगीतरत्नाकर ग्रन्थ सम्बन्धित है–

(a) राजनीति से (b) अर्थशास्त्र से (c) दर्शन से (d) संगीत से

2– संगीतरत्नाकर के रचनाकार हैं –

(a) भरत (b) तुम्बुरु (c) शार्ङ्गदेव (d) विष्णुगुप्त

3– संगीतरत्नाकर में कितने अध्याय हैं –

(a) 12 (b) 06 (c) 05 (d) 07

4– निम्न में से संगीतरत्नाकर में अध्याय सम्मिलित नहीं है –

(a) स्वरगत अध्याय (b) रागविवेक अध्याय

(c) वाद्य अध्याय (d) अलंकार अध्याय

5– संगीतरत्नाकर के अनुसार ग्राम के भेद होते हैं –

(a) 02 (b) 04 (c) 06 (d) 08

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– शार्ङ्गदेव के जन्म–समय एवं जन्म–समय का उल्लेख कीजिये ?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1–आचार्य शार्ङ्गदेव के कर्तृत्व एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कीजिये?

MAST-111

संस्कृत–शास्त्र एवं शास्त्रकार

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड–5

ज्योतिषशास्त्र

इकाई –12 आचार्य वराहमिहिर 151–159

वराहमिहिर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, वराहमिहिर का कर्तृत्व, कृतियों का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिष शास्त्र को वराहमिहिर का योगदान।

इकाई –13 आचार्य आर्यभट एवं आचार्य कल्याणवर्मा 160–171

आर्यभट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान कर्तृत्व, आर्यभटीय का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट की देन। आचार्य कल्याणवर्मा का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, कर्तृत्व, कृतियों का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिषशास्त्र को आचार्य कल्याणवर्मा की देन।

इकाई –14 आचार्य ब्रह्मगुप्त, आचार्य भास्कर एवं आचार्य पराशर 172–186

आचार्य ब्रह्मगुप्त का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, आचार्य का कर्तृत्व, आचार्य की कृतियों का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिष शास्त्र को आचार्य ब्रह्मगुप्त की देन। आचार्य भास्कर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, भास्कराचार्य का कर्तृत्व, सिद्धान्तशिरोमणि का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिष शास्त्र को भास्कराचार्य की देन। आचार्य पराशर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान, आचार्य का कर्तृत्व, कृतियों का प्रतिपाद्य विषय, ज्योतिषशास्त्र को आचार्य पराशर की देन।

mÙkj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;
mÙkj izns'k iz;kxjkt

ijke'kZ lfefr

izks0 lhek flag	dqyifr] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
duZy fou; dqekj	dqylfpo] m- iz- jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izks0 lR;iky frokjh	funs'kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0]iz;kxjkt

fo'k"kK lfefr

izks0 fouksn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd] ekufodh fo|k'kk[kk] m0iz0jk0V0eq0fo0] iz;kxjkt
izks0 gfjnÙk 'kekZ	vkpk;Z ,oa iwoZ v/;{k] lLd`r foHkkx b0fo0fo] iz;kxjkt
izks0 dk'kyhUnz ik.Ms;	vkpk;Z ,oa v/;{k] lkfgR; lLd`r foHkkx dkfgfofo] okjk.kh
izks0 mes'k iz"kkn flag	vkpk;Z] lLd`r foHkkx dk'kh fgfofo] okjk.klh
Mk- fLe"rk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr ¼lafonk½

lEiknd@ifjekid

izks0 fouksn dqekj xqIr	vkpk;Z lLÑr@mifuns'kd ekufodh fo|k'kk[kk m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt

ys[kd

Mk0 x.ks'k Hkkxor	lgk;d vkpk;Z] lLd`r foHkkx jktdh; egkfo|ky;] xqIrdk'kh] #nziz;kx] mÙkjk[k.M

leUo;d

Mk0 fLe"rk vxzoky	lgk;d vkpk;Z] lLÑr m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt

2023 ¼eqfnzr½

© m0iz0 jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt&2023

ISBN- 978-81-19530-76-2

mRrj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt lokZf/kdkj lqjf{kr A bl ikB;lkexzh dk dksbZ Hkh va'k mRrj izns'k jktf"kZ V.Mu eqDr fo'ofo|ky; dh fyf[kr vuqefr fy, fcuk fefe;kxkQ vFkok fdlh vU; lk/ku ls iqu% iLrqr djus dh vuqefr ugha gSA
ukV % ikB; lkexzh esa eqfnzr lkexzh ds fopkjks ,oa vkdMksa vkfn ds izfr fo'ofo|ky;] mÙkjnk;h ugha gSA

izdk'ku % mÙkj izns'k jktf"kZ V.Mu fo'ofo|ky;] iz;kxjkt
izdk'kd % dqylfpo] duZy fou; dqekj m0iz0 jktf"kZ V.Mu fo'ofo|ky;] iz;kxjkt &2023
eqnzd%& pUnzdyk ;quhoflZy izkbZosV fyfeVsM] 42@7 tokgjyky usg: jksM] iz;kxjkt

खण्ड–5

ज्योतिषशास्त्र

प्रस्तावना : शास्त्रों में ज्योतिषशास्त्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बिना कालज्ञान के कोई भी कार्य सम्पन्न करना सम्भव नहीं है। इसलिए ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है। पाणिनि ने ज्योतिष को वेदपुरुष का नेत्र कहा है– 'ज्योतिषामयनं चक्षुः'।

काल और काल की प्रवृत्ति का ज्ञान कराने वाला एकमात्र साधन ज्योतिष ही है। ब्रह्माण्ड के ग्रह–नक्षत्र आदि के बारे में और उनकी गति के ज्ञान का विवेचन इस शास्त्र में वर्णित है। सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों का ज्ञान करने के अनन्तर उनकी गतिविधियों के अनुसार आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना की और निरन्तर ज्योतिष का विकास गतिमान है। ज्योतिष कालगणना का साधन है। इसे नक्षत्रविद्या भी कहा जाता है।

इस खण्ड में तीन इकाइयॉ हैं– इकाई–12, इकाई–13 एवं इकाई–14, जिनका विस्तृत अध्ययन सम्बन्धित इकाई में करेंगे।

इकाई—12 आचार्य वराहमिहिर

इकाई की रूपरेखा

12.1— इकाई परिचय

12.2— उद्देश्य

12.3— वराहमिहिर का जन्म—समय एवं जन्म—स्थान

12.4— वराहमिहिर का कर्तृत्व

12.5— कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

12.6— ज्योतिष शास्त्र को वराहमिहिर का योगदान

12.7— बोध प्रश्न

12.1 इकाई परिचय

परस्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में संस्कृत शास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-III) नामक प्र"न—पत्र का चतुर्थ खण्ड ज्योतिष"ास्त्र से सम्बन्धित है। इस खण्ड में 12वीं इकाई में वराहमिहिर के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- ज्योतिष शास्त्र से अवगत हो सकेंगे।
- आचार्य वराहमिहिर के जीवन—परिचय को जान सकेंगे।
- वराहमिहिर की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ज्योतिष के विविध सिद्धान्तों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.3 वराहमिहिर का जन्म—समय एवं जन्म—स्थान

वराहमिहिर प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री तथा महान् गणितज्ञ थे। अपने जन्म—परिचय के विषय में वराहमिहिर ने कुछ विशेष नहीं लिखा, तथापि अपने ग्रन्थ बृहज्जातक में वे अपना कुछ परिचय देते हैं—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः ।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग
घेरां वराहमिहिरो रुचिराञ्चकार।।

अर्थात् उज्जैन के काम्पिल्य नामक स्थान में आदित्यदास के पुत्र और उन्हीं से ज्योतिष विद्या को पढ़े हुए, सूर्य से वरदान प्राप्त किए हुए वराहमिहिर ने प्राचीन मुनियों के मतों का भली–भाँति निरीक्षण कर इस सुन्दर होरा ग्रन्थ 'बृहज्जातक' की रचना की।

इससे ज्ञात होता है कि वराहमिहिर के पिता आदित्यदास थे, तथा इन्हीं से उन्होंने ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। कुछ विद्वान् काम्पिल्य के स्थान पर कापित्थक इनका जन्म स्थान मानते हैं। वे अवन्तिका क्षेत्र के निवासी थे तथा कापित्थक उनकी कर्मस्थली थी। प्रो रामचन्द्र पाण्डे ने 'संस्कृत साहित्य के बृहद् इतिहास' में भट्टोत्पल के मत को उद्धृत किया है–

कापित्थाख्ये ग्रामे योऽसौ भगवान् सविता सूर्यस्तस्माल्लब्धः प्राप्तो वरःप्रसादो येन।

अर्थात् कपित्थ ग्राम में जो भगवान् सूर्य विराजते हैं, उनसे जिसने वरदान प्राप्त किया था। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में कापित्थके पाठ स्वीकार किया। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने भी अपनी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' में कापित्थक पाठ स्वीकार किया। अतः उज्जयिनी के समीप कापित्थक ग्राम को ही वराहमिहिर का जन्म स्थान निर्धारित किया। वर्तमान में इस स्थल का नाम कायथा है। पूर्व पुरातत्त्वविद् वी.एस वाकणकर के नेतृत्व में कायथा की खुदाई से प्राप्त ताम्राश्मयुगीन सभ्यता के प्रमाण तथा रथारूढ़ सूर्य की प्रतिमा मिलने से विद्वानों ने यह अनुमान बताया कि यह वही सूर्य की प्रतिमा है जिसकी वराहमिहिर पूजा किया करते थे।

वराहमिहिर शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। भट्टोत्पल भी उन्हें शाकद्वीपीय ब्राह्मण मानते हैं। वराहमिहिर ने ज्योतिष शास्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की तदनन्तर वे उज्जयिनी आए होंगे। उज्जयिनी उस समय प्रसिद्ध समृद्ध नगर तथा विद्या का बड़ा केन्द्र था। इसलिए वे स्वयं को आवन्तिक कहने में गौरवपूर्ण समझते हैं।

जन्म–समय से सम्बन्धित वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका में श्लोक प्राप्त होता है –

सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालपमास्य चत्रशुक्लादौ।
अर्धस्तमिते भानौ यवनपुरे सोमदिवसाद्य।।

यहाँ आचार्य वराहमिहिर रोमक सिद्धान्त प्रकरण में अहर्गण बनाने के लिए शक वर्ष 427 घटाने की बात करते हैं तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सोमवार से गणना करें। यह ग्रहस्थिति यवनपुर में अर्धास्त सूर्य के समय की होगी।

सप्ताश्विवेद का तात्पर्य 427 है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन काल के किसी महत्त्वपूर्ण वर्ष को लेता है, अतः 427 से शक 509 तक का काल मिहिर का हो सकता है। ब्रह्मगुप्त के टीकाकार रामराज के अनुसार–

"नवाधिकपंचशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः" अर्थात् शक 509 में वराहमिहिर स्वर्ग को चले गये। 427 शक का विशेष महत्त्व है। कुछ लोग शक 427 को पंचसिद्धान्तिका का रचना वर्ष मानते हैं, तो कुछ उनका जन्म समय शक 427 अर्थात 505 ईसवी को पंचसिद्धान्तिका का रचनाकाल मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। सन 1030ई. में अलबरुनी ने लिखा है कि उसके समय से 526 वर्ष पहले पंचसिद्धान्तिका लिखी गई। इससे 427 शक की तिथि प्राप्त होती है। अतः 407 अर्थात् 505 ईसवी को वराहमिहिर के जन्म–समय मानने में कोई आपत्ति नहीं होती।

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका में आर्यभट्ट का उल्लेख किया है–

लंकार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः।
भूयः स एव सूर्योदयात्प्रभृत्याह लंकायाम्।।

अर्थात् लंका में अर्धरात्रि से दिन की प्रवृत्ति को आर्यभट ने कहा है किन्तु पुनः वही आर्यभट सूर्योदय से वार की प्रवृत्ति लंका में मानी है।

इससे ज्ञात होता है कि वराहमिहिर ने आर्यभट का उल्लेख किया है और आर्यभट का समय 499 ई है। अतः उनके सिद्धान्तों की प्रसिद्धि होने के बाद ही वराहमिहिर ने यह बात लिखी होगी। अतः 505 ईसवी वराहमिहिर का जन्म समय मानना उचित होगा।

इनके पिता ने इनका नाम मिहिर अर्थात् सूर्य रखा था। इनके नाम के आगे वराह शब्द जुड़ने के अनेक दन्तकथाएं प्रचलित हैं। बाल्यकाल में मिहिर एक दिन पिता आदित्यदास के साथ राजा विक्रमादित्य की सभा में गए। वहाँ मिहिर ने राजा को देखते ही बोल उठे कि इस राजा को सूअर मार डालेगा– शूकरो अस्य हन्ता। राजा ने ज्योतिषी आदित्यदास से जब इस विषय में पूछा तो आदित्यदास ने इसे अपने पुत्र की अज्ञानता कहकर टाल दिया। परन्तु कालान्तर में राजा की मृत्यु सूकर से हुई, इसी कारण मिहिर को वराह की उपाधि मिल गयी। तभी से मिहिर वराहमिहिर नाम से प्रसिद्ध हो गया।

एक अन्य मान्यता के अनुसार वराहमिहिर ने विक्रमादित्य के राजदरबार में

रहते हुए भविष्यवाणी की थी, कि विक्रमादित्य की मृत्यु सूकर से होगी। उस समय और भविष्यवाणी को असत्य करने के लिए विक्रमादित्य महल की ऊपरी मंजिल में निश्चिन्त होकर टहलने लगे और अपने सेवकों को आदेश दिया कि कोई भी हिंसक पशु राज्य की सीमा में प्रवेश न करें। परन्तु जैसे ही भविष्यवाणी के अनुसार समय आया राजा जिस दीवार के सहारे खड़ा था ठीक वही दीवार, जिस पर शूकर का चित्र बना था टूट कर गिर पड़ी और राजा विक्रमादित्य की मृत्यु हो गयी। इसलिए मिहिर के नाम में वराह शब्द जुड़ गया।

12.4 वराहमिहिर का कर्तृत्व

वराहमिहिर की निम्नलिखित रचनाएं हैं –

- पंचसिद्धान्तिका
- वृहज्जातक
- वृहद्संहिता
- लघुजातक
- जातकार्णव
- समाससंहिता
- योगयात्रा
- विवाह पटल

12.5 कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

पंचसिद्धान्तका– वराहमिहिर का 'पंचसिद्धांतिका' ग्रन्थ ज्योतिष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्तों को उद्धृत कर अपना मत भी स्थापित किया है। पंचसिद्धान्तिका में 18 अध्याय हैं, जिनमें पूर्वाचार्यों के 5 सिद्धान्तों को उद्धृत किया है–

- पैतामहसिद्धान्त
- वाशिष्ठसिद्धान्त
- रोमकसिद्धान्त
- पौलिशसिद्धान्त
- सौरसिद्धान्त

पंचसिद्धान्तिका ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध से सम्बन्धित है। सिद्धान्त से तात्पर्य गणित की एक ऐसी विशिष्ट पद्धति है जिसके द्वारा किसी भी दिन के सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्यम तथा स्पष्टमान, तिथि, नक्षत्र, दिनमान, संक्रान्तियों, ग्रहों के मान, अस्तोदय, ग्रहण, नक्षत्र, युति इत्यादि ज्ञात किया जाता है।

इस गणितशास्त्र का पितामह ने स्मरण किया, अतः पैतामह सिद्धान्त ही आद्य सिद्धान्त कहलाया। यह ज्ञान पितामह ने अपने पुत्र वशिष्ठ को प्रदान किया, तब यह सिद्धान्त वाशिष्ठसिद्धान्त कहलाया। वशिष्ठ ने यह ज्ञान पाराशर को दिया और पाराशर ने अनेक मुनियों को प्रदान किया। उनमें से पुलिशमुनि ने यह ज्ञान गर्ग आदि ऋषियों को दिया और पौलिशसिद्धान्त कहा गया। तत्पश्चात् यह ज्ञान रोमक को दिया तब वह रोमकसिद्धान्त कहलाया। इस प्रकार पाँच सिद्धान्त वराहमिहिर से पहले ही प्रचलित थे।

पंचसिद्धान्तिका में अपने समय के प्रचलित सिद्धान्तों का साररूप उल्लिखित है। यह एक करण ग्रन्थ है, जिसमें कोई सिद्धान्त प्रतिपादित न कर खगोलशास्त्रीय गणनाओं के लिए नियम दिए हैं। यह किसी एक विशेष सिद्धान्त पर आधारित न होकर अपने समय में प्रचलित सिद्धान्तों का उल्लेख है।

पैतामहसिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तज्योतिष का प्राचीन सिद्धान्त है। इसमें पाँच आर्याएं हैं। जिसमें वेदांग ज्योतिष के सभी तत्त्वों का विवेचन है। पैतामहसिद्धान्त में मध्यमान के सूर्य और चन्द्र की गणना की गयी है तथा तिथि, नक्षत्र, पर्व आदि की गणना भी मध्यमान से की गयी है। इनके अनुसार वर्ष 366 दिन का है तथा युग 5 वर्ष का माना है। युग के अन्त में आवश्यकता पड़ने पर एक दिन छोड़ने की भी व्यवस्था बतायी।

वाशिष्ठसिद्धान्त से पैतामहसिद्धान्त में जहाँ मध्यमान का गणित था तथा केवल सूर्य और चन्द्र से सम्बन्धित गणनायें थी, वही वाशिष्ठसिद्धान्त में स्पष्ट मान के गणित का उल्लेख है। स्पष्ट मान का यह गणित अपेक्षाकृत गणित पर आधारित न होकर वेध और छाया पर आधारित है। स्पष्ट सूर्य, दिनमान, लग्न इत्यादि को निकालने हेतु 12 अंगुल के शंकु की छाया का प्रयोग किया जाता है।

पंचसिद्धान्तिका का प्रारम्भ रोमकसिद्धान्त से ही होता है। इसमें अहर्गण निकालने की प्रक्रिया प्रदर्शित है, तथा युगारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शक 427 सोमवार माना है।

पौलिशसिद्धान्त का वराहमिहिर ने विस्तार से विवेचन किया है। इसमें अहर्गण निकालने की पद्धति रोमकसिद्धान्त की तरह है किन्तु कुछ संशोधन के साथ इस

सिद्धान्त का वर्षमान शुद्ध है, इसलिए इसके अहर्गण भी शुद्ध प्राप्त होते हैं।

सौर सिद्धान्त में सूर्यग्रहण के गणित, चन्द्रग्रहण का ग्रहों के मध्यम मान का तथा ग्रहों के स्पष्ट मान का विवरण प्राप्त होता है।

आचार्य वराहमिहिर ने उपर्युक्त 5 सिद्धान्तों में से सौरसिद्धान्त को सबसे उपयुक्त माना है। रोमक और पौलिशसिद्धान्त को समतुल्य माना है, जबकि शेष दो सिद्धान्त अपेक्षाकृत कम हैं–

पौलिशकृतः स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमक प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ।।

12.6 ज्योतिष शास्त्र को वराहमिहिर का योगदान

वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थों द्वारा भारत के ज्योतिष–सिद्धान्त को सदैव के लिए अमर बना दिया। यदि वराहमिहिर ने पैतामहसिद्धान्त जैसे प्राचीन सिद्धान्तों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत न किया होता तो यह प्राचीन सिद्धान्त काल के गर्त में चले जाते और भारतीय ज्योतिष किसी बाहरी देश से आयातित की हुई सी लगती। परन्तु उन सिद्धान्तों का वर्णन कर वराहमिहिर ने ज्योतिष–जगत् में यह सिद्ध कर दिखाया कि भारत ज्योतिषशास्त्र का जनक है। वराहमिहिर ने ज्योतिष के तीनों ही स्कन्धों सिद्धान्त, होरा और फलित को वैज्ञानिक आधार पर प्रतिस्थापित किया तथा पूर्वाचार्यों के योगदान को संग्रहीत कर सुरक्षित किया।

वराहमिहिर ने बताया कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है –

"गगनमुपैति शिखि–शिखा क्षिप्तमपि क्षितिमुपैति गुरुः किंचित्

तद्वदिह मानवानामसुराणां तद्वदेवाधः"।।

अर्थात् अग्नि वायवीय तत्त्व है, इसलिए अग्नि की शिखा आकाश की ओर जाती है। वैसे ही कोई भी पार्थिव तत्त्व जरा भी भारी होने पर पृथ्वी की ओर आता है, यही यहाँ मनुष्यों की स्थिति है और वही स्थिति दक्षिणी ध्रुव में रहने वालों की है कि वे आकाश में नहीं गिरते, परन्तु वे पृथ्वी को स्थिर मानते हैं। उनका मानना है कि तारामण्डल प्रवह वायु के द्वारा घूमता है।

वराहमिहिर ने बताया कि चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं होता, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान है। चन्द्रमा की कलाओं में वृद्धि और ह्रास का कारण भी सूर्य है।

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूच्छिंतास्तमो नैशम्।

क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः।।

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम्
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः।।

अर्थात् जैसे दर्पण पर गिरे हुए सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से घर के अन्दर का अन्धकार नष्ट होता है, उसी तरह जल चन्द्रमा के ऊपर गिरी हुयी सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से रात्रि का अन्धकार समाप्त हो जाता है।

ग्रहण के विषय में वराहमिहिर ने पूर्व से प्रचलित मतों का खण्डन किया कि ग्रहण राहु द्वारा सूर्य–चन्द्र को ग्रसने से होता है। खण्डन करते हुए आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि राहु कोई ठोस ग्रह नहीं है, बल्कि आकाशीय खगोलीय स्थितियाँ हैं और इन्हीं स्थितियों से ग्रहण होता है। आगे वे कहते हैं, यदि राहु मूर्तिमान् राशि में चलने वाला होता, शिर और बिम्ब वाला होता तो निश्चित गति वाला होकर भगणार्ध पर स्थित सूर्य और चन्द्र को कैसे ग्रसता ?

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः

प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दो भानोश्च पूर्वार्धात्।।

यदि मूर्ता भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः

भगणार्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः।।

अपने मत को स्थापित करते हुए वे बताते हैं कि चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा भूच्छाया में और सूर्यग्रहण में वह सूर्यबिम्ब में प्रविष्ट होता है। यह सिद्धान्त आधुनिक सिद्धान्त से तुल्यता रखता है। आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्यग्रहण सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा के आने पर होता है जबकि चन्द्रग्रहण में सूर्य और चन्द्र के बीच पृथिवी के आ जाने पर होता है।

उन्होंने पृथ्वी की स्थिति की तुलना चारों ओर से चुम्बक लगे घेरे में लोहे से की है। उनका मानना है कि पृथिवी शून्य में अधर में लटकी है, क्योंकि चारों ओर से गुरुत्वाकर्षण के कारण वह टिकी हुयी है।

12.7 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– पंचसिद्धान्तिका के रचनाकार हैं –

(a) आर्यभट (b) कल्याणवर्मा (c) वराहमिहिर (d) ब्रह्मगुप्त

2– वराहमिहिर का जन्म स्थान माना जाता है –

(a) कापित्थक (b) वैशाली (c) तक्षशिला (d) देवगढ़

3– पंचसिद्धान्तिका में कितने सिद्धान्तों का उल्लेख है –

(a) 04 (b) 03 (c) 02 (d) 05

04– बृहज्जातक के रचयिता हैं –

(a) आचार्य पराशर (b) अभिनवगुप्त (c) अश्वघोष (d) वराहमिहिर

05– निम्न में से वराहमिहिर की रचना नहीं है –

(a) बृहत्संहिता (b) लघुजातक (c) जातकार्णव (d) लीलावती

06– अपने ग्रन्थ पंचसिद्धन्तिका में किस सिद्धान्त को वराहमिहिर ने उत्तम माना है

(a) पौलिशसिद्धान्त (b) पैतामहसिद्धान्त

(c) वाशिष्ठसिद्धान्त (d) सौरसिद्धान्त

7– वराहमिहिर के पिता थे

(a) राजसेन (b) महासेन (c) आदित्यदास (d) रामदास

8– रोमकसिद्धान्त प्रकरण में वराहमिहिर ने अहर्गण बनाने के लिए किस शक वर्ष को घटने की बात कही –

(a) 509 शक वर्ष (b) 409 शक वर्ष

(c) 427 शक वर्ष (d) 405 शक वर्ष

लघु उत्तरीय प्रश्न

1— वराहमिहिर की कृतियों का उल्लेख कीजिये ?

2— वराहमिहिर का ज्योतिष शास्त्र को योगदान का उल्लेख कीजिये ?

विस्तृत—उत्तरीय प्रश्न

1— वराहमिहिर का जन्म—समय एवं जन्म—स्थान का उल्लेख कर पंचसिद्धान्तिका का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिये ?

इकाई –13 आचार्य आर्यभट एवं आचार्य कल्याणवर्मा

इकाई की रूपरेखा

13.1– इकाई परिचय

13.2–उद्देश्य

13.3– आर्यभट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

13.4– कर्तृत्व, आर्यभटीय का प्रतिपाद्य विषय

13.4.1– आर्यभटीय

13.4.1.1– गीतिकापाद

13.4.1.2– गणितपाद

13.4.1.3– कालक्रियापाद

13.4.1.4.– गोलपाद

13.5– ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट की देन

13.6– आचार्य कल्याण वर्मा का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

13.7– कर्तृत्व, कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

13.8– ज्योतिष शास्त्र को आचार्य कल्याण वर्मा की देन

13.9– बोध प्रश्न

13.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर संस्कृत"ाास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-III) नामक प्र"न–पत्र की तेहरवीं इकाई आचार्य आर्यभट एवं आचार्य काल्याण वर्मा से सम्बन्धित है। इस इकाई में अन्त दोनों आचार्यों के व्यक्तित्व–कर्त्तव्य का अध्ययन किया जायेगी।

13.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- आचार्य आर्यभट के जन्म–समय एवं जन्म–स्थान के विषय में जान सकेंगे।
- आर्यभट की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।

➢ आर्यभट द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।

➢ आचार्य कल्याणवर्मा के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।

➢ कल्याणवर्मा के कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।

13.3 आर्यभट का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

आर्यभट प्राचीन भारत के महान् ज्योतिषविद् और गणितज्ञ थे। आर्यभट का जन्म 476 ईसवी (शक 398) में हुआ था। अपने ग्रन्थ आर्यभटीय में उन्होंने गणितीय ढंग से अपना जन्म समय बताया है–

षष्ठ्यब्दानां षष्ठिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिकविंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः।।

अर्थात् जब तीन युग सतयुग, त्रेता और द्वापर बीत गए, पुनः साठ गुणे साठ बीतने लगा, तब मैं 23 वर्ष का था। इस श्लोक के अनुसार सत्य, त्रेता, द्वापर तीन युग तथा कलि के 60 वर्षों की 60 आवृत्ति 3600 वर्ष बीत जाने पर आर्यभट की आयु 23 वर्ष की थी।

$$6060 = 3600$$

शक 1929 में कलि 5108 वर्ष बीत जाने पर

$$5108 - 3600 = 1508$$

इस प्रकार 421 शक में इनकी आयु 23 वर्ष की थी और 421– 23= 398 शक में इनका जन्म समय निर्धारित होता है।

इसी बात को सिद्ध करने के लिए प्रो. रामचन्द्र पाण्डे अपनी पुस्तक में डॉ गोरखप्रसाद के मत का उल्लेख करते हैं कि कलि संवत् 3577 में आर्यभट का जन्म हुआ था और ग्रहों की गणना हेतु इन्होंने कलि सम्वत् 3600 निश्चित किया था, क्योंकि इनके ग्रन्थ में कहीं भी शक संवत् का उल्लेख नहीं है। उपर्युक्त विवेचन से आर्यभट का समय 476 ईसवी निर्धारित होता है।

आर्यभट का जन्म–स्थान के विषय में विद्वानों में मत–वैविध्य है। आर्यभट ने स्वयं आर्यभटीय में लिखा है कि– "आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्" अर्थात् आर्यभट इस कुसुमपुर में अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है। इससे कुछ लोग आर्यभट का जन्म स्थान कुसुमपुर मानते हैं। यह कुसुमपुर वर्तमान बिहार राज्य की राजधानी पटना है, जिसे प्राचीनकाल में पाटलिपुत्र के नाम से भी

जाना जाता था।

आर्यभट के भाष्यकार भास्कर प्रथम ने आर्यभट को 'अश्मक' शब्द से सम्बोधित किया है और उनके ग्रन्थ को 'आश्मकतन्त्र' तथा उनके अनुयायियों को 'आश्मकीयाः' संज्ञा दी है। अश्मक देश नर्मदा और गोदावरी के बीच अवस्थित क्षेत्र है। आर्यभटीय का दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक प्रचार हुआ। इसलिए कुछ विद्वानों का मत है उनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ और वे कुसुमपुर विद्यार्जन के लिए गए।

13.4 कर्तृत्व, आर्यभटीय का प्रतिपाद्य विषय

आर्यभट के दो ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है –

- आर्यभटीय
- आर्यसिद्धान्त

आर्यसिद्धान्त उपलब्ध नहीं है, इसके विषय में कुछ सूचना ही प्राप्त होती हैं।

13.4.1 आर्यभटीय– आर्यभट ने 'आर्यभटीय' नामक प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की। इसमें गणित और खगोल विज्ञान के विषयों का विवेचन है। यह पद्यबद्ध ग्रन्थ है। आर्यभटीय चार भागों में विभक्त है तथा 121 पद्यों में संकलित है–

- **गीतिकापाद** (13पद्य)
- **गणितपाद** (33 पद्य)
- **कालक्रियापाद** (25 पद्य)
- **गोलपाद** (50 पद्य)

13.4.1.1 गीतिकापाद– इसमें 13 पद्य हैं। इसके प्रथम श्लोक में ब्रह्मा की एवं परब्रह्म की वन्दना की गई है। तत्पश्चात् संख्याओं को अक्षरों से सूचित करने का ढंग बताया गया है। इस पाद में महायुगीय भ्रमण, ब्राह्मदिवसमान, आकाश कक्षा का विस्तार, सूर्य–चन्द्र और पृथिवी का योजनव्यास, मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्चों का परिचय आदि वर्णित है। आर्यभट ने एक महायुग में पृथ्वी के घूर्णन की संख्या भी दी है। ग्रहों के उच्च और पात के महायुगीय भगणों की संख्या बतायी गयी है। ब्रह्मा के 1 दिन में मन्वन्तर और युग, युगपाद का वर्णन किया है। राशि, अंश, कला आदि का सम्बन्ध ग्रहों की कान्ति और विक्षेप, उनके पातों और मन्दोच्चों के स्थान उनकी मन्दपरिधियों और शीघ्रपरिधियों के परिमाण तथा 03अंश 45 कलाओं

के अन्तर पर ज्याखण्डों के मानों की सारणी है।

आर्यभटीय चूँकि पद्यमय रचना है, उस समय अंको को प्रदर्शित करने की सरल विधि नहीं थी। इसलिए उन्होंने अक्षरांक पद्धति का आविष्कार किया –

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा।।

वर्गाक्षर और उनकी संख्यायें

क् = 1	च् =6	ट् =11	त् =16	प् =21
ख् =2	छ्=7	ठ् =12	थ् =17	फ् =22
ग् =3	ज् =8	ड् =13	द् =18	ब् =23
घ् =4	झ् =9	ढ् =14	ध् =19	भ् =24
ङ् =5	ञ्=10	ण् =15	न् =20	म् =25

अवर्गाक्षर

य्=3०	श् =8०	
र् =4०	ष् =80	
ल् =6०	स् =9०	
व् =7०		ह् =10०

स्वर

अ =1

इ =100

उ $=100^2$

ऋ $=100^3$

लृ $=100^4$

ए $=100^5$

ऐ $=100^6$

ओ $=100^7$

औ $=100^8$

व्यंजन के साथ स्वर मिलने पर

कु का मान = ककार ×उकार

1 ×10000=10000

अवर्गाक्षर और स्वर मिलने पर

यि का मान = यकार×इकार

= 30×100 =3000

13.4.1.2 गणितपाद– गणितपाद में 33 श्लोक हैं, जिसमें आर्यभट ने अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित सम्बन्धी सूत्रों का विवेचन किया है। प्रथम मंगलाचरण में पितामह और परब्रह्म को नमस्कार कर गणित, कालक्रिया तथा गोल के वर्णन करने का उल्लेख है–

प्रणिप्रत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परब्रह्म।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम्।।

दूसरे श्लोक में संख्या लिखने की विधि, तत्पश्चात् वर्गक्षेत्र, घन, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल, वृत्त का क्षेत्रफल, गोले का घनफल, समलंब चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों के सम्पात से समान्तर भुजाओं की दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकार के क्षेत्रों की मध्यम लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल बताने के साधारण नियम उल्लिखित हैं। एक श्लोक में वे दश गुणोत्तर संख्याओं का वर्णन करते हुए वृत्त के व्यास और परिधि का सम्बन्ध बताते हैं कि यदि किसी वृत्त का व्यास 20000 हो तो वृत्त की परिधि 62832 होगी। वृत्त की परिधि और व्यास का जो अनुपात है, वह चार दशमलव तक शुद्ध है–

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।

अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।।

(4+100) अर्थात् 8$+62000 = 62832$, उस वृत्त की परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास 20000 है–

$62832 \div 20000 = 3.1416$

और 3.1416 को भी वे सन्निकट मान मानते हैं। इसी मान का आज भी सर्वत्र प्रयोग होता है।

आर्यभट ने वृत्त, त्रिभुज और चतुर्भुज खींचने की रीति, शंकु और छाया से छायाकर्ण जानने की रीति, किसी ऊँचे स्थान पर रखे हुए दीपक के प्रकाश के कारण बनी हुई शंकु की छाया की लम्बाई जानने की रीति, एक ही रेखा पर स्थित दीपक और दूसरों के सम्बन्ध के प्रश्न की गणना करने की रीति, समकोण त्रिभुज के कर्ण और अन्य दो भुजाओं के वर्गों का सम्बन्ध (जिसे अब पाइथागोरस प्रमेय कहा जाता है), श्रेणी गणित के नियम, वर्गों और घनों का योगफल जानने का नियम, ब्याज की दर जाने का नियम, त्रैराशिक नियम, भिन्नों को एकहर करने की रीति, बीजगणित के सरल समीकरण, दो ग्रहों का युतिकाल जानने का नियम, कुट्टक नियम आदि बताए गए हैं।

13.4.1.3 कालक्रियापाद– इस भाग में 25 श्लोक हैं और इसमें ज्योतिष के सैद्धान्तिक विषयों का विवेचन है। जिसमें कालमान प्रमुख है। इस पाद में योग, व्यतिपात, केन्द्र भगण और बार्हस्पत्य वर्षों की परिभाषा दी गयी है। साथ ही अनेक प्रकार के मासों, वर्षों और युगों का सम्बन्ध बताया गया है। इसी में ग्रहों की मध्यम और स्पष्ट गति सम्बन्धी नियम हैं।

13.4.1.4 गोलपाद– आर्यभटीय का यह अन्तिम भाग है, जिसमें 50 श्लोक हैं। इसमें गोलीय विषयों को निरूपित करने के साथ ही विषुव सम्पात, ग्रहों के पात, भूभ्रमण मार्ग, देशान्तर साधन, ग्रहों के उदयास्त एवं कलांश, लग्न साधन, ग्रहण गणित, दृक्कर्म, लम्बन, नति तथा ग्रहयुति आदि का विवेचन किया गया है।

क्रान्तिवृत्त के जिस बिन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है, वह वसन्त–सम्पात–बिन्दु था, क्योंकि उनके अनुसार मेष आदि से कन्या के अन्त तक क्रान्तिवृत्त (अपमण्डल) उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अन्त तक दक्षिण की ओर। उन्होंने बताया कि ग्रहों के पात और पृथ्वी की छाया का भ्रमण क्रान्तिवृत्त पर होता है। पाँचवें श्लोक में उन्होंने बताया कि पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रों का आधा गोला अपनी छाया से प्रकाशित होता है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित होता है। इसी में पृथ्वी और सूर्य के योग से सूर्य के, सूर्य और चन्द्रमा के योग से चन्द्रमा तथा ग्रहों के योग से सब ग्रहों के

मूलांक जानने की रीति बतायी गयी है।

13.5 ज्योतिषशास्त्र को आर्यभट की देन

आर्यभट का न केवल भारत में अपितु विश्व के ज्योतिष सिद्धान्त पर बहुत प्रभाव रहा है। भारतीय गणितज्ञों में आर्यभट महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आर्यभट ने अपने ग्रन्थ आर्यभटीय में 121 आर्या छन्दों में ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त और उससे सम्बन्धित गणित को सूत्ररूप में निबद्ध किया है।

आर्यभटीय में आर्यभट ने पाई का मान शुद्ध निरूपित किया है। ज्योतिष के क्षेत्र में नए विचार प्रस्तुत किए, जिसमें वे उल्लेख करते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तथा गोल है–

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्।।

अर्थात् नाव में बैठा हुआ कोई पूर्व दिशा की ओर जाते हुए जिस प्रकार तट के समीप की अचल वस्तु को विपरीत दिशा में जाता हुआ देखता है, उसी प्रकार अचल तारामण्डल लंका में पश्चिम की ओर जाते हुए प्रतीत होते हैं। आर्यभट ने यह खोज कोपर्निकस से हजार वर्ष पूर्व कर दी थी। उनके अनुसार नाव में बैठा हुआ मनुष्य जब प्रवाह के साथ आगे बढ़ता है, तब वह समझता है कि अचर वृक्ष, पाषाण, पर्वत आदि पदार्थ उल्टी गति से जा रहे हैं। उसी तरह गतिमान पृथ्वी पर से स्थिर नक्षत्र भी उल्टी गति से जाते हुए दिखाई देते हैं। अतः सर्वप्रथम आर्यभट ने सबसे पहले यह घोषणा की थी कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है।

कल्प के सम्बन्ध में आर्यभट ने एक कल्प में 14 मन्वन्तर और एक मन्वन्तर में 72 महायुग (चतुर्युग) तथा एक चतुर्युग में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को समान माना है। आर्यभट ने सौरमण्डल के एक भूकेन्द्रीय मॉडल का वर्णन किया है।

आर्यभट्ट ने माना कि चन्द्रमा और ग्रह सूर्य के परावर्तित प्रकाश से चमकते हैं। उनके अनुसार चन्द्रग्रहण तब होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है। पृथ्वी की इस छाया के आकार और विस्तार की विस्तार से चर्चा की। तत्पश्चात् ग्रहण वाले भाग, भाग का आकार और इसकी गणना का उल्लेख

किया।

आर्यभट ने पृथ्वी पर दिन–रात्रि के परिवर्तन का कारण सूर्य को न मानकर पृथ्वी के भ्रमण को माना है। आर्यभट ने पृथ्वी की दैनन्दिन गति (अक्षभ्रमण) की घोषणा कर ज्योतिष जगत् में चमत्कार उत्पन्न कर दिया था। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार जब हम नौका पर बैठकर यात्रा करते हैं तो नदी के किनारे स्थित वृक्षादि विपरीत दिशा में चलते हुए प्रतीत होते हैं, तथा नौका स्थिर सी लगती है। इसी प्रकार का भ्रम हम पृथ्वी में रहने वाले लोगों को होता है। हम लोगों को पृथ्वी स्थिर तथा ग्रह नक्षत्रादि घूमते हुए प्रतीत होते हैं। जबकि हम पृथ्वी के साथ–साथ स्वयं भ्रमण करते हैं। यह भूभ्रमण की पहली घटना थी। आर्यभट ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का संकेत मात्र ही किया है–

"प्राणेनैति कलां भूः"

अर्थात् पृथिवी एक प्राण में एक कला चलती है।

किन्तु परवर्ती आचार्यों ने भूः का पाठ भं कर दिया, जिससे आर्यभट का सिद्धान्त विपरीत हो गया और कहा कि आचार्य ने पृथ्वी के भ्रमण को न बताकर भपंजर के भ्रमण का संकेत दिया है। भं का अर्थ तारामण्डल है।

आर्यभट का महत्त्वपूर्ण योगदान है, काल विवेचन। उन्होंने पूर्वाचार्यों की अपेक्षा सरल काल विवेचना की–

72 युग

4320000 सौर वर्षों का एक महायुग

72 महायुग का 1 मनु

1008 महायुग =14 मनु का एक कल्प

इनकी काल गणना की विशेषता है कि उसमें सन्ध्या सन्ध्यांशों को स्थान नहीं दिया है। चारों युगपादों के प्रमाण को समान निर्धारित किया है। प्रत्येक कल्प का प्रथम दिन एक ही होता है, तथा प्रत्येक युगपाद के अन्त में सभी ग्रहों के भगण पूर्णांकों में आते हैं।

गणित के क्षेत्र में भी आर्यभट की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। भारतीय खगोल परम्परा में आर्यभट के कार्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनके ग्रन्थों के अनुवाद

द्वारा कई पड़ोसी देशों को ज्योतिष ज्ञान प्राप्त हुआ। व्यास और परिधि का मान आर्यभट ने सूक्षतम और शुद्ध माना है। यह मान दशमलव के चार अंकों तक ग्रहण किया है। गणित में ज्या साधन भी आर्यभट की ही देन है।

इस प्रकार आर्यभट वह प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत में वैज्ञानिक खोज द्वारा एक नई परम्परा का सूत्रपात किया। उनका यह योगदान न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए ज्योतिष के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है।

13.6 आचार्य कल्याण वर्मा का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

आचार्य कल्याणवर्मा ने अपने जीवन परिचय के सन्दर्भ में कोई विशेष जानकारी नहीं दी। अपने ग्रन्थ के आरम्भ में वे लिखते हैं–

देवग्रामपुरप्रपोषणबलाद् ब्रह्माण्डसत्पंजरे
कीर्तिहंसविलासिनीव सहसा यस्येह भात्या तत्।
श्रीमद्व्याघ्रपदीश्वरो रचयति स्पष्टां स सारावलीं
होराशास्त्रविनिर्मलीकृतमनाः कल्याणवर्मा कृती।।

अर्थात् देवग्राम नामक नगर में पालन–पोषण होने से इस ब्रह्माण्डरूपी सुन्दर पिंजरे में हंसिनी की तरह फैली हुई जिसकी कीर्ति शोभित हो रही है, होराशास्त्र के द्वारा जिसका चित्त निर्मल हो गया है, ऐसा श्रीमद्व्याघ्रपदीश्वर विद्वान् कल्याणवर्मा इस सारावली की स्पष्टरूप से रचना कर रहा है।

विद्वानों ने व्याघ्रपदीश्वर शब्द से ग्रन्थकार को बघेलवंशीय माना है। बघेलखण्ड जनपद में अनुश्रुति के अनुसार रीवाँ के बघेलवंशीय क्षत्रियों के मूलपुरुष व्याघ्रदेव थे। उनका मुख बाघ के सदृश था। इसी कारण उनकी सन्तान बघेल कहलायीं। आज भी रीवाँ के महाराज की ओर से प्रकाशित कैलेण्डरों में बघेलवंश चित्रावली छापी जाती है, जिसके मध्य में स्थित व्याघ्रदेव का मुख्य बाघ के सामान रखा जाता है।

रीवाँ राज्य के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि बाघराव व्याघ्रदेव विक्रम संवत् 1234 में रीवा की ओर आए थे। व्याघ्रदेव ने यहीं अपना किला स्थापित किया था, तथा कालिंजर पर अधिकार किया। व्याघ्रदेव के 2 पुत्र कर्णदेव तथा कन्धरदेव थे।

व्याघ्रदेव के अनन्तर कर्णदेव राजा हुए, जो संस्कृत के विद्वान् थे। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र पर आधारित सारावली नामक ग्रन्थ की रचना की। यही कर्णदेव कल्याण वर्मा नाम से प्रसिद्ध हुये।

महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने "श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपकालात्" इस ब्रह्मगुप्त के पद्य से व्याघ्रपदीश्वरो के स्थान पर व्याघ्रभटेश्वरो यह पाठान्तर ज्ञात किया और उससे व्याघ्रमुख व व्याघ्रभट में समानता मानकर ब्रह्मगुप्त के काल से पूर्व ही इनका काल 560 शक माना है।

मुरलीधर चतुर्वेदी ने अपने ग्रन्थ सारावली व्याख्या में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा कि सारावली ग्रन्थकार के प्रणेता कल्याण वर्मा रीवाँ के कल्याण वर्मा से भिन्न हैं। सारावली ग्रन्थकार कल्याण वर्मा रीवाँ के कल्याण वर्मा से बहुत पहले गुजरात के शासक थे और व्याघ्रदेव उनके मूल पुरुष थे। इनका समय 500 शक से 821 शक के मध्य रहा है।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने कल्याण वर्मा का समय 821 शक के लगभग माना है।

13.7 कर्तृत्व एवं कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

कल्याणवर्मा ने ज्योतिष के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सारावली' की रचना की है, जिसमें ज्योतिष के होरा या जातक का विवेचन है। ग्रन्थ में अधोलिखित विषयों पर चर्चा है–

शास्त्रावतार, होराशब्दार्थचिन्ता, होराराशिभेद, ग्रहयोनिभेद, मिश्रकाध्याय, कारकाध्याय, आधानाध्याय, सूतिकाध्याय, अरिष्टाध्याय, चन्द्रारिष्टभंगाध्याय, अरिष्टभंगाध्याय, चन्द्रविधि (सुनफा, अनफा, दुरुधुरायोग) वेशिवाश्युभयचरीयोग, द्विग्रहयोग, त्रिग्रहयोग, चतुर्ग्रहयोग, पंचग्रहयोग, षड्ग्रहयोग, प्रव्रज्याध्याय, नाभसयोग, आदित्यचारदृष्टियोग, अंशकदर्शनेचन्द्रचार, अंगारकचार, बुधचार, गुरुचार, शुक्रचार, सौरचार, भावाध्याय, अन्तरयोगाध्याय, भाग्यचिन्ता, कर्मचिन्ता, लोकयात्रा, राजयोगाध्याय, रश्मिचिन्ता, पंचमहापुरुषयोग राजयोगभंगाध्याय, आयुर्दायाध्याय, मूलदशाफलम्, अन्तर्दशाफलम्, दशारिष्टुलम्, दशारिष्टभंगाध्याय, उच्चादिचिन्तनम्, स्त्रीजातकफलम्, निर्वाणफलम्, नष्टजातके लग्नगुण, नष्टजातके होरागुण, नष्टजातके द्रेष्कागुण, नष्टजातके नववर्गचिन्ता, नष्टजातकाध्याय, अष्टकवर्गाध्याय, वियोनिजन्माध्याय, उपसंहाराध्याय।

13.8 ज्योतिष शास्त्र को आचार्य कल्याण वर्मा की देन

इस ग्रन्थ में जातक के सर्वविध सुख–दुःख, अच्छा–बुरा, लाभ–हानि आदि जीवन से सम्बन्धित पक्षों का विस्तृत विवेचन किया है। यद्यपि होरा का विवेचन

पूर्व में वराहमिहिर ने किया था तथापि उसमें संक्षेप वर्णन तथा विषयों का विभाग स्पष्ट नहीं था। कल्याणवर्मा ने स्वयं कहा कि यवनाचार्यादि द्वारा बनाए गए विस्तृत ग्रन्थों से सारहीन वस्तुओं का त्याग करके साररूप पदार्थों का ज्ञान इस ग्रन्थ में कर रहा हूँ– "सकलमसारं त्यक्त्वा तेभ्यः सारं समुद्धियते"।

13.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– आर्यभटीय ग्रन्थ के रचनाकार हैं –

(a) ब्रह्मगुप्त (b) कल्याणवर्मा (c) आर्यभट (d) वराहमिहिर

2– आर्यभटीय में निम्न से कौन सा पाद नहीं है –

(a) गीतिकापाद (b) गणितपाद (c) कालक्रियापाद (d) वास्तुपाद

3– आर्यभटीय में आर्यभट ने अंकों को प्रदर्शित करने के लिए किस विधि का अविष्कार किया –

(a) वस्तुपद्धति (b) ग्रहपद्धति (c) अक्षरांक पद्धति (d) नक्षत्रपद्धति

4– सारावली ग्रन्थ सम्बन्धित है –

(a) संगीतशास्त्र से (b) राजनीतिशास्त्र से

(c) काव्यशास्त्र से (d) ज्योतिष शास्त्र से

5– सारावली ग्रन्थ के रचनाकार हैं –

(a) आचार्य पाराशर (b) भास्कर प्रथम

(c) कल्याण वर्मा (d) वराहमिहिर

लघुउत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य कल्याण वर्मा के कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये ?

2– ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट के योगदान का उल्लेख कीजिये ?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आर्यभट के जन्म–समय का उल्लेख करते हुए आर्यभटीय का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिये ?

2– कल्याण वर्मा के जन्म–समय पर प्रकाष डालते हुए 'सारावली' के प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट कीजिये।

इकाई–14 आचार्य ब्रह्मगुप्त, आचार्य भास्कर एवं आचार्य पराशर

इकाई की रूपरेखा

14.1– इकाई परिचय

14.2– उद्देश्य

14.3– आचार्य ब्रह्मगुप्त का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

14.4– आचार्य का कर्तृत्व

14.5– आचार्य की कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

14.6– ज्योतिष शास्त्र को आचार्य ब्रह्मगुप्त की देन

14.7– आचार्य भास्कर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

14.8– भास्कराचार्य का कर्तृत्व

14.9– सिद्धान्तशिरोमणि का प्रतिपाद्य विषय

14.10– ज्योतिष शास्त्र को भास्कराचार्य की देन

14.11– आचार्य पराशर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

14.12– आचार्य का कर्तृत्व,कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

14.13–ज्योतिषशास्त्र को आचार्य पराशर की देन

14.14– बोध प्रश्न

14.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर संस्कृत"ाास्त्र एवं शास्त्रकार (MAST-III) नामक प्र"न–पत्र ज्योतिष"ाास्त्र खण्ड के अन्तर्गत इकाई–14 में ज्योतिष"ाास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य ब्रह्मगुप्त, आचार्य भास्कर तथा आचार्य परास्पर के व्यक्तित्व एवं कर्त्तव्य के विषय में अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य : इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- आचार्य ब्रह्मगुप्त के जीवन–परिचय से अवगत हो सकेंगे।
- ब्रह्मगुप्त के कर्तृत्व के विषय में जान सकेंगे।
- आचार्य भास्कर के जन्म–समय एवं जन्म–स्थान से अवगत हो सकेंगे।
- भास्कर की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भास्कर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
- आचार्य पराशर का जीवन–परिचय जान सकेंगे।
- आचार्य पराशर की रचनाओं से अवगत हो सकेंगे।

14.3 आचार्य ब्रह्मगुप्त का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

आचार्य ब्रह्मगुप्त इन्होंने अपने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के संज्ञाध्याय के 2 श्लोकों में अपना परिचय दिया है–

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।

पंचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिः 550 रतीतैः।।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै।

त्रिंशद्वर्षेण कृतौ जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्तेन।। (संज्ञाध्याय)

इन्होंने अपने विषय में अपने ज्योतिष"ीस्त्रीय ग्रन्थ में ब्राह्मस्फुतसिद्धान्त में अत्यन्त संक्षिप्त जानकारी दी है–

इससे प्रतीत होता है कि ब्रह्मगुप्त ने यह ग्रन्थ चापवंशीय राजा व्याघ्रमुख के राज्यकाल में शक 550 ईसवी में लिखा है और उस समय उनकी उम्र सम्भवतः 30 रही होगी। इस प्रकार ब्रह्मगुप्त का समय 598 ई निर्धारित होता है।

ब्रह्मगुप्त भीनमाल के निवासी थे, जो आबू पर्वत तथा लूनी नदी के बीच स्थित है। ह्वेनसांग के भारत आने के समय यह शहर गुजरात की राजधानी थी। इसी कारण ब्रह्मगुप्त को 'भिल्लमाचार्य' कहा जाता है। गिरजाशंकर शास्त्री ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है कि चावडे अथवा चापोत्कट वंश का राज्य सन 756 से 941 पर्यन्त अन्हिलवाड़ में था और इस समय तक उत्तर गुजरात में छोटी–छोटी

रियासतें उसके अधिकार में थीं। चावड़े वंश ब्रह्मगुप्त कथित चापवंश होना चाहिए। अतः ब्रह्मगुप्त का निवास स्थान भीन्नमाल (भीनमाल) निर्धारित होता है।

14.4 आचार्य का कर्तृत्व

ब्रह्मगुप्त प्रसिद्ध गणितशास्त्री थे। उनकी दो रचनाएं उपलब्ध हैं–

- ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त
- खण्डखाद्यक

14.5 आचार्य की कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त– ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित ग्रन्थ है, उन्होंने स्वयं कहा है–

ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत् खिलीभूतम्

अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन

संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः

तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ।।

जो ब्राह्म सिद्धान्त प्राचीनता के कारण कुछ त्रुटिपूर्ण हो गया था, उसे जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्त ने शुद्ध किया और स्पष्टतः उल्लेख किया। इस ग्रन्थ में 24 अध्याय हैं, जो 1008 श्लोकों में निबद्ध हैं। प्रारम्भिक 10 अध्यायों में ज्योतिषीय सिद्धान्तों का विवेचन किया है। शेष 14 अध्यायों में गणितीय सिद्धान्तों का उल्लेख है। जिसमें अंकगणित, बीजगणित और यन्त्रों का वर्णन किया है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, उदयस्ताधिकार, चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार, चन्द्रच्छायाधिकार, ग्रहयुत्याधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, तन्त्रपरीक्षाध्याय, गणिताध्याय, मध्यगतिप्रश्नोत्तराध्याय, स्फुटगत्युत्तराध्याय, त्रिप्रश्नोत्तराध्याय, ग्रहणोत्तराध्याय, शृंगोन्नत्युत्तराध्याय, कुट्टकाध्याय, शङ्कुच्छायादिज्ञानाध्याय, छन्दश्चित्युत्तराध्याय, गोलाध्याय, यन्त्राध्याय, मानाध्याय, संज्ञाध्याय, ध्यानग्रहोपदेशाध्याय का विवेचन है।

ब्राह्मासिद्धान्त में भूमण्डल, आकाश और पृथ्वी का स्वरूप, ग्रहों की परिक्रमा, कालगणना, मध्यम ग्रहानयन, वृत्तांश की ज्या साधन, ग्रहों के स्थानों का साधन, छाया नतांश–उन्नतांश का साधन, ग्रहों के उदयास्त का साधन, शृंगोन्नति का साधन, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब साधन, ग्रहों के समागम और

युक्ति का साधन, आदि विवेचित है। प्रो रामचन्द्र पाण्डेय ने डॉ एस बालचन्द्रराव का कथन उद्धृत किया है–

"पूर्व में कहा गया था कि ब्रह्मगुप्त के इस सिद्धान्त के अलावा दो और ब्राह्मा या पैतामहसिद्धान्त है, जो शाकल्य तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में संकलित हैं। किन्तु ब्रह्मगुप्त की रचना इन दोनों से खगोलीय तत्त्वों के सन्दर्भ में स्वतन्त्र हैं। वस्तुतः ब्रह्मगुप्त के बाद केवल उनका ग्रन्थ ही ब्राह्मसिद्धान्त के नाम से जाना जाता रहा है"। ब्रह्मगुप्त कुशल गणितज्ञ थे। अपने ग्रन्थ में वे गणितज्ञ का लक्षण करते हुए कहते हैं –

नाचार्यो ज्ञातैरपि तन्त्रैरार्यभटविष्णुचन्द्राद्यैः

यो ब्रह्मधूलिकर्मविदाचार्यत्वं भवति तस्य।।

अर्थात् आर्यभट विष्णुचन्द्र आदि आचार्यों के तन्त्रों के ज्ञानमात्र से कोई आचार्य नहीं हो जाता है। जब व्यक्ति ब्रह्मगुप्त के धूलिकर्मादि गणित का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तभी आचार्यत्व और गणितज्ञ होता है। अपने गणित का परिचय देते हैं–

परिकर्मविंशति यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।

अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः।।

अर्थात् जो संकलित आदि 20 परिक्रमों को और छाया सहित आठ व्यवहारों को भली–भान्ति जानता है, वही कुशल गणक गणितज्ञ होता है।

अपने ग्रन्थ में ब्रह्मगुप्त ने सभी प्रमुख परिक्रमों और व्यवहारों का विवेचन किया है। बीजगणित में शून्य का उपयोग करने वाले ब्रह्मगुप्त पहले भारतीय गणितज्ञ हैं।

अ–0 = अ

–अ –0= –अ

0–0 =0

अ×0=0

0×0=0

0÷0=0

लेकिन शून्य का भाग शून्य से देने पर शून्य सही नहीं है। कुछ विद्वानों का

मत है कि ब्रह्मगुप्त ने संकलन–व्यवकलन, शून्य तथा ऋण अंक का सर्वप्रथम प्रयोग किया। व्यास और परिधि का सम्बन्ध भी 10 के वर्गमूल के तुल्य माना है। ब्रह्मगुप्त ने कल्पारम्भ तथा सृष्टियारम्भ को साथ–साथ माना है। इन्होंने पृथ्वी के स्वरूप का उचित प्रतिपादन कर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का भी विवेचन किया।

खण्डखाद्यकम्– ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित यह खगोल शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसकी रचना ब्रह्मगुप्त ने 665 ईसवी में की थी। यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है–

पूर्वखण्डखाद्यकम्– इसमें 9 अधिकार हैं। इसमें ब्रह्मगुप्त आर्यभट द्वारा प्रतिपादित अर्धरातिका प्रणाली का उपयोग करते हैं।

उत्तरखण्डखाद्यकम्– इसमें 5 अधिकार हैं। इसमें पूर्वखण्डखाद्यकम् की त्रुटियों का संशोधन किया गया है। जैसे पूर्वखण्डखाद्यकम् में सूर्य का मन्दोच्च 2 राशि 20 अंश बताया है, जबकि उत्तरखण्ड में 2 राशि 17 अंश कर दिया। ज्योतिष के क्षेत्र में यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

14.6 ज्योतिष शास्त्र को आचार्य ब्रह्मगुप्त की देन

ब्रह्मसिद्धान्त ज्योतिष तथा गणित का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। गणित के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त की सबसे बड़ी देन है, अनिर्धार्य वर्ग समीकरण $NX^2 + 1 = \mathrm{Y}^2$ हल करने की विधि बताना। पाश्चात्य गणितज्ञ इसको हल करने का श्रेय जोनपैल (1668) को देते हैं, जबकि जॉनपैल के कई वर्षों पहले ब्रह्मगुप्त ने इस समीकरण को हल करने की विधि की खोज कर ली थी। इसके लिए उन्होंने 02 प्रमेयिका खोजी थी। इस अनिर्धार्य वर्ग समीकरण का भारतीय नाम वर्ग प्रकृति है। इसे हल करने की प्रमेयिका को भारतीय गणित में भावना नाम से जाना जाता है।

ब्रह्मगुप्त का दूसरा बड़ा योगदान चक्रीय चतुर्भुज से सम्बन्धित है। उन्होंने बताया कि चक्रीय चतुर्भुज के विकर्ण परस्पर लम्बवत होते हैं। उन्होंने चक्रीय चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने का सन्निकट सूत्र तथा यथातथ सूत्र भी दिया है। ब्रह्मगुप्त की इसी प्रमेय को महावीराचार्य और भास्कर द्वितीय ने और अधिक विस्तार किया।

बीजगणित के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त की खोज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बीजगणित को उन्होंने कुट्टक का नाम दिया। उनके अनुसार कुट्टाकार (बीजगणित) के बिना सवालों को हल करना प्रायः सम्भव नहीं होता, इसलिए मैं प्रश्नों सहित कुट्टाकार की जानकारी दूँगा–

प्रायेण यतः प्रश्नाः कुट्टाकारादृते न शक्यन्ते।

ज्ञातुं वक्ष्यामि ततः कुट्टाकारं सह प्रश्नैः।।

बीजगणित में उन्होंने शून्यपरिकर्म, संकलन, व्यवकलन, समीकरण, मध्यमाहरण, वर्गप्रकृति तथा भावित आदि प्रक्रियों का निरूपण प्रस्तुत किया है। पाइथागोरस, पेल्स आदि नामों से व्यवहृत प्रमेयों को ब्रह्मगुप्त बहुत पहले सिद्ध कर चुके थे। इसमें शून्य की गणितीय भूमिका, धनात्मक और ऋणात्मक दोनों प्रकार की संख्याओं के साथ गणितीय संक्रियाओं के नियम, वर्गमूल निकालने की विधि, रैखिक समीकरण तथा वर्ग समीकरणों के हल करने की विधि, गणितीय श्रेणियों का योग, ब्रह्मगुप्त सर्वसमिका, ब्रह्मगुप्त प्रमेय आदि महत्त्वपूर्ण विधि परवर्ती गणितज्ञों के लिए ब्रह्मगुप्त की महत्त्वपूर्ण देन है।

14.7 आचार्य भास्कर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

भास्कराचार्य या भास्कर द्वितीय भारत के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषी थे। गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय में उन्होंने अपने बारे में लिखा है–

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने

नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः

श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः

साधूनामबधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूड़ामणिः

तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधी

म्ग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदम् प्रस्फुटम्

एतद् व्यक्तसदुक्तयुक्ति–बहुलं हेलावगम्यं विदां

सिद्धान्तग्रन्थानं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः।।

इस श्लोक के अनुसार भास्कराचार्य शाण्डिल्य गोत्र के भट्ट ब्राह्मण थे और सह्याद्रि क्षेत्र के विज्जलवड नामक स्थान इनका जन्म स्थान है। इनके पिता का नाम महेश्वर था। उन्हीं से उन्होंने गणित, ज्योतिष, वेद, काव्य, व्याकरण आदि की शिक्षा प्राप्तकर सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की। गोलाध्याय में ही वे लिखते हैं –

रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेभवन्ममोत्पतिः

रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणिः रचितः।।

यहाँ रस का अर्थ 6 ,गुण का अर्थ 3, पूर्ण का अर्थ शुन्य तथा मही का अर्थ एक होता है। 'अंकानां वामतो गतिः' सूत्रानुसार शक संवत् 1036 में भास्कराचार्य का जन्म हुआ था तथा 36 वर्ष की अवस्था में इन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की। इस प्रकार 1114 ईसवी में भास्कराचार्य का जन्म निर्धारित होता है तथा 1150 ई में सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की।

खानदेव में 40 गाँव से लगभग 15 किलोमीटर दूर नैर्ऋत्य दिशा की ओर पाटण नामक उजाड़ गाँव है, जहाँ स्थित भवानी मन्दिर से प्राप्त शिलालेख में भास्कराचार्य से सम्बन्धित जानकारी उल्लिखित है।

इससे प्राप्त वर्णन के अनुसार भास्कराचार्य के पौत्र चंगदेव यादव वंशीय सिंघण राजा के ज्योतिषी थे। सिंघण राजा का राज्य देवगिरी में सम्वत 1132 से 1159 (अर्थात 1210 से 1237) ईस्वी तक रहा। चंगदेव ने सिद्धान्तशिरोमणि तथा उनके वंश के अन्य विद्वानों के द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्यापन कराने के उद्देश्य से पारण में मठ स्थापित किया, जिसके लिए राजा सिंघण के माण्डलिक निकुम्भवंशीय सोइदेव ने शक 1129 में कुछ सम्पत्ति दान में दी थी। इस शिलालेख के अनुसार भास्कर के पिता महेश्वर, पितामहा मनोरथ तथा प्रपितामह मनोरथ थे। भास्कर के पुत्र लक्ष्मीधर तथा पौत्र चंगदेव थे।

अकबर ने शक 1587 ई में भास्करकृत लीलावती का पर्शियन भाषा में अनुवाद कराया। उस अनुवादक ने भास्कराचार्य का जन्म स्थल दक्षिण में वेदर बताया था। यह जगह सोलापुर से लगभग 50 कोस पूर्व मोगलई में स्थित है, परन्तु यह स्थल सह्याद्रि के पास नहीं है। मोगलई में वेदर से लगभग 50 किलोमीटर पश्चिम में कल्याण नामक स्थान है, जहाँ चालुक्य वंश का राज्य था। परन्तु उस राज्य के साथ भास्कराचार्य का सम्बन्ध न होना समीचीन नहीं लगता।

चंगदेव के शिलालेख में लिखा है– 'जैत्रपालेन यो नीतः' इस वाक्य से ज्ञात होता है कि भास्कराचार्य के पुत्र लक्ष्मीधर को राजा जैत्रपाल ने पारणपुर से बुलवाया था। यह पारणपुर गाँव देवगिरी के पास ही है और सह्याद्रि पर्वत की चान्दबड़ की पहाड़ी से लगा है। बहाल नामक गाँव में भास्कर के वंशज अनन्तदेव का बना हुआ मन्दिर है, वह भी पारण के 30 किलोमीटर पर स्थित है। उसके पास ही विज्जडविड जैसा गाँव था। यही विज्जडविड भास्कराचार्य की जन्मस्थली है।

14.8 भास्कराचार्य का कर्तृत्व–

भास्कराचार्य ने दो ग्रन्थों की रचना की–

- सिद्धान्तशिरोमणि
- करणकुतूहल

करणकुतूहल– भास्कराचार्य द्वारा रचित गणित ग्रन्थ है। इसे ब्रह्म पक्ष का पोषक माना जाता है। यह 10 अधिकारों में निबद्ध है।

14.9 सिद्धान्तशिरोमणि का प्रतिपाद्य विषय –

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की रचना उन्होंने 1150 ईस्वी में की। यह संस्कृत में लिखा ग्रन्थ है, जो चार भागों में निबद्ध है–

- लीलावती /पाटी अध्याय
- बीजगणिताध्याय
- ग्रहगणिताध्याय
- गोलाध्याय

लीलावती– अंकगणित और महत्व मापन का यह स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें ज्योतिष विषयक वर्णनों के साथ–साथ सरस कवि का रूप भी दृष्टिगोचर होता है। यह 278 पद्यों में संकलित है। इसमें प्रश्न प्रायः लीलावती को सम्बोधित करके पूछा गया है–

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रूहि सहितान्

द्विपञ्चद्वात्रिंशत्त्रिनवति शताष्टदश दश

शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे

यदि व्यक्ते युक्तिव्यकलनमार्गेऽसि कुशला।।

अर्थात् अये बाले लीलावती, यदि तुम जोड़ और घटाने की क्रिया में दक्ष हो गयी हो तो इनका योगफल बताओ–

द्विपंचद्वात्रिंशत् (32), त्रिनवतिशत् (193), अष्टादश (18), दश(10), इनमें 100 जोड़ते हुए (शतोपेतेन) 10000 (अयुतात्) इनको घटा दें (वियुतात्)–

इसमें विविध प्रमाणों के कुछ पैमाने, परार्धपर्यन्त संख्याएं, पूर्णांकों का योग,

अन्तर, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल हैं। इन आठों को परिकर्म–अष्टक, कहा जाता है। भिन्न–परिकर्म–अष्टक, शून्य–परिकर्म–अष्टक, प्रकीर्णक, मिश्रक व्यवहार, इष्टकर्म, त्रैराशिक, पंचराशि, श्रेढ़ी, विविध क्षेत्रों और घनों का क्षेत्रफल, घनफल, इत्यादि विषयों का विवेचन है।

लीलावती के क्षेत्रव्यवहार–प्रकरण में भास्कराचार्य ने त्रिकोणमिति, त्रिभुजों तथा चतुर्भुजों के क्षेत्रफल, पाई का मान और गोलों के तल का क्षेत्रफल तथा आयतन के बारे में जानकारी दी है–

व्यासे भनन्दाग्नि हते विभक्ते

खबाणसूर्यैः (1250) परिधिस्तु सूक्ष्मः।

द्वाविंशति घ्ने वृह्तेऽथ शैलैः (7)

स्थूलोऽथवा स्याद् व्यवहारयोग्यः।।

अर्थात् पाई का सूक्ष्म मान= 3927 / 1250

पाई का स्थूलमान= 22 / 7

यदि किसी के व्यास को मापकर उसकी परिधि को मापते हैं तो परिधि की लम्बाई व्यास की लम्बाई से लगभग 22 / 7 गुणी होती है। इसका मान भास्कराचार्य ने 3.1416 माना है। ग्रन्थ का नाम लीलावती सम्भवतः भास्कराचार्य ने अपनी पत्नी के नाम पर रखा हो। लीलावती में भास्कराचार्य ने अपने समय में प्रचलित सोने–चान्दी, भूमि, अन्नादि के मापक तौलक, बराटक, काकिणी, पण, निष्क, द्रुम, गुंजा, माषा, कर्ष, पल, अंगुल, हस्त, दण्ड, क्रोश, योजन, खारिका, द्रोण, आढ़क, प्रस्थ आदि का उल्लेख किया है। संख्याओं के नाम– एक, दश, शत, हजार, दशहजार (अयुत), लाख (लक्ष), दश लाख (प्रयुत), करोड़ (कोटि), अर्ब (अर्बुद), दश अर्ब (अब्जा), खर्व, दशखर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधि, अन्त्य, मध्य, और परार्ध का उल्लेख किया है।

वृत्त का क्षेत्रफल= परिधि×1 / 4 ((व्यास)

गोले का तल= 4×(वृत्त का क्षेत्रफल)

गोले का आयतन= ⅙ ×गोले का तल (व्यास)

बीजगणित– बीजगणित भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि का द्वितीय भाग है। इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं का जोड़, घटाव गुणा और भाग, वर्ग और वर्गमूल, शून्य का योग, वियोग (घटाव), अज्ञात राशि और मान निकालना,

करणी (अवर्ग) का योग, वियोग, गुणन, भाग, वर्ग और वर्गमूल, कुट्टक, वर्ग प्रकृति, अनिर्धार्य द्विघात समीकरणों के हल की चक्रवाल विधि, एक वर्ग समीकरण, अव्यक्त वर्ग समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, अनेक वर्ण मध्यमाहरण और भावित विषयों का विवेचन है।

वर्ग प्रकृति को स्पष्ट करते हुए कहा कि ऐसा अंक जिसका मूल पूर्णांक हो जाता है। उदाहरण– जैसे वह कौन सा वर्गांक है, जिसको 8 से गुणाकर उसमें एक जोड़ दे तो वह अंक वर्गांक रहता है।

अनिर्धार्य द्विघात समीकरणों को हल करने के लिए भास्कराचार्य ने 'चक्रवाल विधि' प्रस्तुत की। चकवाल गणित चक्र की तरह भ्रमणशील है, इसलिए इस गणित का नाम चक्रवाल रखा है। उदाहरण– वह कौन सा वर्ग है, जिसे 67 से गुणाकर उसमें एक का वर्ग जोड़ देने से लब्धांक वर्गांक हो जाता है।

गणिताध्याय– इसमें ग्रहखगोल विषय का विवेचन किया गया है। इसमें 12 अधिकार हैं। मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, ग्रहच्छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार, ग्रहयुति अधिकार, भग्रहयुति अधिकार, पाताधिकार।

गोलाध्याय– यह सिद्धान्तशिरोमणि का चौथा भाग है। यह ग्रहगणिताध्याय व ग्रहगोलाध्याय दोनों परस्पर पूरक हैं। दोनों खगोल से सम्बन्धित हैं। गोलाध्याय का विभाजन 14 भागों में विभक्त है–

- गोलप्रशंसाध्याय– गोले की अध्ययन की प्रशंसा
- गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय– गोले की प्रकृति
- भुवन कोशाध्याय– ब्रह्माण्ड तथा भूगोल
- मध्यगति वासना– ग्रहों की माध्य गति
- छेद्य अधिकार
- ज्योतिपत्तिवासनाध्याय
- गोलबन्धाधिकार– गोलीय त्रिकोणमिति
- त्रिप्रश्नवासनाध्याय– दीर्घवृत्त से सम्बन्धित गणनाएं
- ग्रहणवासना– ग्रहों की प्रथम बार दर्शन
- उदयास्तवासना

- शृंगोन्नतिवासना (चान्द्रदर्शन की गणना)
- यन्त्राध्याय (खगोलीय उपकरण)
- ऋतुवर्णनाध्याय (ऋतुएँ)
- प्रश्नाध्याय (खगोलीय गणना सम्बन्धी प्रश्न)

14.10 ज्योतिष शास्त्र को भास्कराचार्य की देन

भास्कराचार्य ने गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्र में अभूतपूर्व आविष्कारों से विश्व को विस्मित कर दिया। आधुनिक दशमलव पद्धति का मूल भास्कराचार्य के सावयव अंकों का सूक्ष्म मूल आनयन पद्धति में दिखाई देता है। भास्कराचार्य भारत के महान् गणितज्ञ थे। इन्होंने ही पूर्ण आत्मविश्वास के साथ यह प्रस्तुत किया कि कोई संख्या जब शून्य से विभक्त की जाती है तो अनन्त हो जाती है, तथा किसी संख्या और अनन्त का जोड़ भी अनन्त होता है।

ग्रहों की दैनिक गति का सही–सही पता लगाने के लिए उन्होंने दिन को छोटे–छोटे कालमानों में बाँटा और तात्कालिक गति की धारा प्रस्तुत की। इसके द्वारा खगोल वैज्ञानिकों को ग्रहों की गति का सही पता लगाने में मदद मिलती है।

भास्कर ने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का वर्णन किया कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। आकर्षण के कारण वस्तु गिरती हुई सी प्रतीत होती है–

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्

खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या

आकृष्यते तत्पततीव भाति

समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

परन्तु भास्कर की उपलब्धि को इतिहासकार प्रस्तुत नहीं कर पाए और भास्कर से 600 वर्ष बाद आइजक न्यूटन को पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का श्रेय दिया गया।

बीजगणित में भास्कराचार्य ने समीकरण को हल करने की चक्रवाल विधि प्रस्तुत की है। कुछ समय पश्चात् यूरोपियन गणितज्ञों गेलोयस, यूलर ने इस तरीके की फिर से खोज की और उसे इनवर्स साइक्लिक नाम से सम्बोधित किया।

भास्कराचार्य ने ही सर्वप्रथम अंकगणितीय क्रियाओं का अपरिमेय राशियों में प्रयोग किया। चक्रीय विधि द्वारा आविष्कृत, अनिश्चित एकघातीय और वर्गी समीकरण के व्यापक हल प्रस्तुत किये। इन्होंने अनन्त, कलन और फलन से सम्बन्धित सूत्र दिए। भास्कर को अवकल गणित का संस्थापक कहा जा सकता है। पश्चिम में न्यूटन और लैबनीज को इसका संस्थापक माना जाता है। ये प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने दशमलव प्रणाली की क्रमिक रूप से व्याख्या की।

भास्कराचार्य के ग्रन्थों का भारत में बड़ा आदर हुआ। उन ग्रन्थों पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी। अकबर ने फैजी से लीलावती का फारसी में अनुवाद करवाया, बाद में बीजगणित का भी फारसी में अनुवाद हुआ। गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में भास्कराचार्य ने परवर्ती भारतीय गणितज्ञों पर विशेष प्रभाव छोड़ा। इनके ग्रन्थ आज भी गणितज्ञों का मार्गदर्शन करते हैं।

14.11 आचार्य पराशर का जन्म–समय एवं जन्म–स्थान

वैदिक सूक्तों के द्रष्टा और ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध गोत्रप्रवर्तक ऋषि पराशर, शक्ति मुनि के पुत्र एवं महर्षि वशिष्ठ के पौत्र थे। इनकी माता का नाम अदृश्यन्ती था, जो कि उतथ्य की पुत्री थी। भारतीय ज्योतिष प्रवर्तकों में आचार्य पराशर अग्रगण्य हैं।

पराशर का काल महाभारत काल के लगभग होना अनुमानित प्रतीत होता है। कलियुग नामक कालखण्ड के प्रारम्भ में पराशर मत की सर्वोपरि मान्यता स्पष्ट है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि उस समय वशिष्ठ व पितामह सिद्धान्त प्रसिद्ध था, अतः नारद, वशिष्ठ, पितामहादि ज्योतिष प्रवर्तकों के पश्चात् पराशर का समय मानने से परम्परया इनका अस्तित्व कलियुग के आदि में प्रतीत होता है। अर्थशास्त्र में पराशर का उल्लेख मिलता है। बृहदारण्यकोपनिषद् व तैत्तिरीयारण्यक में भी व्यास व पराशर के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है।

निरुक्तकार यास्क ने भी पराशर का उल्लेख करते हुए इनके पिता शक्ति के नाम का भी उल्लेख किया है।

अग्निपुराण के अनुसार इनके पिता शक्ति थे। यही पराशर सत्यवती पर मोहित हुए थे। सत्यवती का अन्य नाम मत्स्यगन्धा था। इसी सत्यवती तथा पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। पराशर ने कलियुग में व्यवस्था बनाये रखने के लिए 'पराशरस्मृति' या 'द्वादशाध्यायी' धर्मसंहिता की रचना की थी।

पराशर शब्द का अर्थ है– 'पराशृणाति पापानीति पराशरः' अर्थात् जो दर्शन–स्मरण करने से ही समस्त पापों का नाश करता है, वही पराशर है।

निरुक्त में यास्क पराशर की व्याख्या इस प्रकार की है –

'पराशातयिता यातुनाम् इति पराशरः' अर्थात्– जो चारों ओर से राक्षसों का विनाश करने में समर्थ हो, वह पराशर है।

14.12 आचार्य का कर्तृत्व एवं कृतियों का प्रतिपाद्य विषय

आचार्य पराशर की ऋचाएं ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं। आचार्य पराशर के नाम से निम्नलिखित रचनाएं जानी जाती हैं –

- बृहत्पराशरहोराशास्त्र,
- लघुपाराशरी
- बृहत्पाराशरीय धर्मसंहिता,
- पराशरीय धर्मसंहिता
- पराशरसंहिता (वैद्यक),
- पराशरीय पुराणम्
- पराशरोदितं नीतिशास्त्रम्
- पराशरोदितं वास्तुशास्त्रम्

इनमें से बृहत्पराशरहोराशास्त्र तथा लघुपाराशरी ज्योतिषीय ग्रन्थ हैं, जिनमें आचार्य ने ज्योतिषीय सिद्धान्तों का विवेचन किया है। प्राचीन और वर्तमान का ज्योतिष शास्त्र आचार्य पराशर द्वारा बताए गए नियमों पर ही आधारित है।

पराशरस्मृति धर्मशास्त्र पर आधारित रचना है। यह ग्रन्थ धर्मसंहिता है। इसमें बताया गया है कि कलियुग में लोगों की शारीरिक शक्ति कम होती है, इसलिए तपस्या, ज्ञानसम्पादन आदि सहज नहीं हैं, इसलिए कलियुग में दानरूप धर्म की महत्ता है–

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौयुगे।।

आचार्य पराशर ने धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वास्तुकला, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की।

14.13 ज्योतिषशास्त्र को आचार्य पराशर की देन

भारतीय ज्योतिष में आचार्य पराशर का योगदान अनुपम है। उनके द्वारा प्रदत्त सिद्धान्तों का परवर्ती आचार्यों द्वारा आदर के साथ स्मरण किया गया है। इनका ग्रन्थ पराशरहोराशास्त्र ज्योतिष साहित्य में अनुपम है। इसकी व्यापकता और गुणग्राहकता सर्वत्र प्रचलित है। वराहमिहिर आचार्य ने भी आचार्य पराशर के मत का उल्लेख करते हुए उनका समर्थन किया है। ज्योतिष शास्त्र में बृहद्पराशरहोराशास्त्र अन्तिम निर्णायक ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। यह ग्रन्थ फलित ज्योतिष का आधार है।

14.14 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त प्रस्तुत किया –

(a) आर्यभट (b) वराहमिहिर (c) ब्रह्मगुप्त (d) कल्याणवर्मा

2– सिद्धान्तशिरोमणि के रचनाकार हैं –

(a) वराहमिहिर (b) ब्रह्मगुप्त (c) पराशर (d) भास्कराचार्य

3– बृहद्पराशरहोराशास्त्र का सम्बन्ध है –

(a) संगीतशास्त्र से (b) आयुर्वेद से (c) ज्योतिष से (d) कामशास्त्र

4– लीलावती ग्रन्थ का विषय है –

(a) आयुर्वेद (b) नृत्य (c) कथा (d) गणित

5– भिल्लमाचार्य किसे कहा जाता है –

(a) आर्यभट (b) पराशर (c) ब्रह्मगुप्त (d) भास्कराचार्य

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1– सिद्धान्तशिरोमणि का प्रतिपाद्य का उल्लेख कीजिये।

2– आचार्य पराशर के कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1– आचार्य ब्रह्मगुप्त का जीवन–परिचय का उल्लेख करते हुए उनके कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये।

2– भास्कराचार्य का जीवन परिचय का उल्लेख करते हुए उनके कर्तृत्व का उल्लेख कीजिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृतकाव्यशास्त्रेतिहासः– आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2015
2. भारतीय शास्त्र और शास्त्रकार– प्रो. मृदुला त्रिपाठी, डा गिरिजाशंकर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी, संस्करण– वि.सं. २०7८
3. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास– आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी,
4. संस्कृत व्याकरण–शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), युधिष्ठिर मीमांसक, युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़, जिला–सोनीपत (हरयाणा)
5. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, (काव्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद) प्रकाशक पवन कुमार, आई.ए.एस. निदेशक उत्तरप्रदेश–संस्कृत –संस्थान, लखनऊ, द्वितीय संस्करण–2021
6. नाट्यशास्त्र– भरत,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
7. काव्यप्रकाश, डा नरेन्द्र, प्रकाशक–ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
8. काव्यालंकार– वामन, चौखम्भा वाराणसी
9. लीलावती– भास्कराचार्य, खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रकाशक, मुम्बई
10. भारतीय ज्योतिष–नेमि चन्द शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
11. आयुर्वेद का इतिहास– अत्रिदेव विद्यालंकार, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ
12. संगीत शास्त्र, के.वासुदेव शास्त्री, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण –1958

Notes

Notes

Notes

Notes

Notes

Notes